Jeevan dharshan

जीवन-दर्शन

विश्व-कवि ख़लील जिब्रान की अमर-कृति
"दी प्रॉफ़ेट" का हिन्दी भाषान्तर

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

श्री सत्यकाम विद्यालङ्कार
Satyakam vidyalankar

Rajpal and Sons
प्रकाशक
Lahore
राजपाल एण्ड सन्ज़
अनारकली — लाहौर।

प्रकाशक—
राजपाल एण्ड सन्ज़
अनारकली, लाहौर

acc : no : 15919

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

मूल्य दो रुपये—

SPS
891.431 S 16 J
15919

मुद्रक—
विश्वनाथ एम० ए०
दी आर्य प्रेस लिमिटिड,
१७ मोहनलाल रोड, लाहौर।

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक खलील जिब्रान की अमर-कृति "दी प्रॉफ़ेट" का सर्वोत्तम हिन्दी भाषान्तर है। अभी तक हिन्दी साहित्य में इस विश्व-कवि की यह अमर-कृति इतने सुन्दर रूप में न आई थी। श्री सत्य-काम जी ने इस पुस्तक की भावनाओं को हिन्दी भाषा में प्रति-बिम्बित करने के लिये विशेष प्रयत्न किया है। पाठकों से यह छिपा नहीं कि श्री सत्यकाम जी मानव जीवन के आन्तरिक चित्र चित्रित करने में परम प्रवीण हैं। उनके इस अनुवाद की साहित्यिकों ने जी खोल कर प्रशंसा की है। जिन लोगों ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'गीताञ्जलि' पढ़ी है, वे इस पुस्तक में उससे भी अधिक आनन्द उठा सकेंगे।

पुस्तक को अधिक उपयोगी एवं सुन्दर बनाने में श्री बलदेवसिंह जी ने जो अनथक प्रयास किया है, मैं उनका आभार प्रदर्शन किए बिना नहीं रह सकता। मुझे पूरा विश्वास है कि साहित्यिक क्षेत्र में यह पुस्तक अपने लिए एक विशेष स्थान बना लेगी।

लाहौर
१-४-१९४६

विश्वनाथ एम. ए.

क्रम

	पृष्ठ संख्या
महाप्रस्थान	१
प्रेम	१०
विवाह	१४
सन्तान	१६
दान	१८
खान-पान	२२
परिश्रम	२७
हर्ष-विषाद	२६
घर	३१
वस्त्र	३५
क्रय-विक्रय	३७

अपराध और दण्ड	३६
क़ानून	४५
स्वतन्त्रता	४६
विवेक और भावना	५३
दुःख	५६
आत्म-ज्ञान	५८
अध्यापन	६०
मैत्री	६२
वार्तालाप	६५
काल	६७
श्रेय और अश्रेय	६६
प्रार्थना	७३
आनन्द	७६
सुन्दरता	८१
धर्म	८५
मृत्यु	८८
निर्वाण	६१
	१०७

जीवन-दर्शन

महाप्रस्थान—

अलमुस्तफ़ा उसका नाम था।

प्रभु के विशेष प्रेम से उसका जीवन उषा की तरह निर्मल कान्ति से चमक रहा था।

बारह साल तक आर्फलीज नगर में रहते हुए उसने अपने वतन के बिछुड़न का दर्द लिये हुए उस जहाज़ की बाट देखी थी, जो उसे अपने वतन की ओर वापिस ले जाने वाला था।

बारहवें साल, इलूल (असौज) महीने की ७वीं तारीख को, उसने नगर के बाहर पर्वत के शिखर पर चढ़ कर देखा, एक जहाज़ समुद्र पर छाये-धुँधले कुहासे में से उसी ओर को बढ़ रहा था।

उसके दिल के दरवाज़े पूरे खुल गये और उसके मन की खुशी समुद्र की लहरों पर उछलने लगी। उसकी आनन्द

विभोर पलकें और मन आत्मा के मौन मन्दिर में प्रभु चरणों पर झुक गये।

लेकिन शिखर से नीचे आते हुए उसके मन पर उदासी छा गयी। वह चिन्ता में पड़ गया।

उस ने कहा—

क्या मैं बिछुड़न का दर्द लिये बिना यहाँ से विदा हो सकूँगा?

सचमुच इस नगर में मेरे दिन दुःखों से भारी और रातें सूनेपन की टीस लिये गुज़री हैं। लेकिन उस दुःख और सूनेपन से विदा लेते हुए भी तो आज मन की ममता मचल रही है, हृदय विह्वल हो रहा है।

इस नगर की गलियों में मैंने अपने मन के मोतियों को जी भर कर लुटाया है, और उस पर्वत की गोदियों में मेरे आशा-आकांक्षाओं के सपनों की नन्हीं दुनियाँ साँस ले रही है! मैं असह्य वेदना अनुभव किये बिना किस प्रकार उनसे विदाई ले सकता हूँ!

मैं इन्हें जीर्ण वस्त्र की तरह उतार कर नहीं फेंक सकता। मुझे तो इनसे विदा लेते इतना कष्ट अनुभव होगा मानो मैं अपने शरीर से अपनी त्वचा पृथक कर रहा हूँ।

इस पर्वत-शृंखला से विदा लेकर मैं केवल अपना विचार ही पीछे नहीं छोड़ जाऊँगा परन्तु एक ऐसा दिल भी,

जो भूख-प्यास और मिलन के वियोग की मिठास से भरा हुआ है।

किन्तु अब मैं रुक नहीं सकता।

समुद्र पृथ्वी के चर-अचर को अपनी ओर पुकार रहा है, मुझे भी प्रस्थान करना ही होगा।

यद्यपि काल के पखों को रात की ज्वाला जला रही है, तो भी मेरे यहाँ ठहरने का अर्थ होगा—जीवन-शक्ति का बर्फ़ में जम जाना और स्फटिक बन कर निर्जीव साँचों में ढल जाना।

मैं आर्फलीज़ की प्रत्येक वस्तु अपने हृदय की गहराईयों में समेट कर ले जाऊँगा।

मगर यह कैसे मुमकिन है!

ओठ गुंजन को पंख लगा कर आकाश में उड़ा देते हैं। क्या गुँजन ओठों का वाहन बन सकता है! उसे तो अकेले ही विचरना है।

और हंस को भी अपना नीड़ छोड़ कर अकेले मान-सरोवर की उड़ान भरनी है।

पहाड़ की तलहटी पर आकर वह फिर समुद्र की ओर मुड़ा और उसने देखा कि उसके अपने वतन के माझियों के साथ जहाज़ चिर वियोग की उत्कण्ठा लिये तट की ओर बढ़ रहा है।

उसकी आत्मा पुकार उठी, मेरी पुरातन-जननी-जन्म-भूमि के पुत्रो, स्वागत !

सहस्रों बार तुम से सपने में भेंट हुई और आज मेरी जागृति में, जो और भी भेद भरा स्वप्न हो गई है, पहली बार तुम से साक्षात् हुआ।

और मैं तुम्हारे संग चलने को प्रस्तुत हूँ, अनुकूल हवा की बाट में आत्मा के पाल चढ़ाये हुए।

सोचता हूँ, एक ही क्षण और इस सहमी-सी हवा में साँस लेना है। बस एक ही बार और मुड़कर इस मोहमयी तरुणी को प्रेमभरी दृष्टि से देखना है।

उसके बाद मैं भी इन यात्रियों में यात्री बन कर जाऊँगा, सागर प्रवासियों में प्रवासी बन कर।

ओ अनन्त परिधि सागर ! ओ ममतामयी माता ! तू ही अविराम बहती सरिताओं का अन्तिम विराम और तट की सीमा तोड़ कर मुक्त होने की सुन्दर युक्ति है।

मेरे जीवन मार्ग में अब एक यही प्रवाह शेष है और एक ही कलकल।

तदन्तर मैं तुझ में मिल जाऊँगा, जैसे एक बूँद असीम सागर में मिल जाती है।

उसने देखा कि नगर के नर-नारी अपने अधजुते खेतों से नगर द्वार की ओर झुण्ड के झुण्ड बढ़े आ रहे थे और

चिन्ता के साथ उसका नाम ले लेकर उसे पुकार रहे थे, आने वाले जहाज़ के आगमन की चर्चा कर रहे थे।

तब उसने स्वगत कहा—

क्या अन्तिम वियोग का दिन ही मिलन का दिन होगा?
और मेरी जीवन-संध्या ही जीवन प्रभात की उषा बनेगी?

जो लोग मेरे लिये अपने अधजुते खेत छोड़ आये हैं, मैं कौन सी वस्तु उनकी भेंट दे सकूँगा?

काश! मेरा हृदय सुन्दर फूलों से भरे वृक्षों का रूप धारण कर ले और मैं उन्हें बटोर कर इनके अर्पण कर सकूं।

काश! मेरी अभिलाषायें ऐसा अजस्र प्रपात बन जायें, जिनसे मैं उनके जीवन के प्यालों को लबा-लब भर दूँ।

काश! मैं वह वीणा बन जाता जिसके तार विधाता की अँगुलियों को छूकर झंकृत हो उठते या मैं वह मुरली बन जाता, जो वंसी वाले के अधर से लगकर उसके निःश्वासों से बज उठती।

मुझे शान्त नीरवता की तलाश है।

और उस शान्ति में हाथ आये अतुल खजाने को मुक्त-हस्त लुटाने की अभिलाषा है।

यदि आज खेती काटने का दिन है तो क्या जाने गये दिनों की किस वेला में मैंने किन खेतों में, किससे, कितने बीज लेकर बो दिये थे।

क्या सचमुच यही घड़ी है, जब कि मुझे अपना जीवन-दीपक ऊँचा उठाना है।

परंतु इस दीपक में मेरी आत्मा प्रकट न होगी।

मुझे अपने शून्य और अंधकारपूर्ण दीपक को ऊँचा उठाना होगा।

रात के 'राजा' को इसमें 'तेल' डालना····हाँ इसमें जोत भरनी ही होगी।

× × ×

शब्दों में उसने ये विचार प्रगट कर दिये। किन्तु दिल अनेक भावों से भारी रह ही गया। क्योंकि वह अभी तक अपने आत्म-निहित गूढ़ अन्तर के भेदों को शब्दों में व्यक्त नहीं कर सका था।

जब उसने नगर में प्रवेश किया तो सब नगर निवासी भेंट करने आये और सब एक स्वर में उसे पुकारने लगे।

नगर के पंचों ने आगे बढ़ कर कहा—हमें छोड़ कर मत जाओ।

तुम हमारी ढलती शाम में मध्याह्न के चमकते सूर्य रहे हो और तुम्हारा यौवन हमारी आकांक्षाओं की स्वप्न-सृष्टि का निर्माण करता रहा है।

हमारे बीच अब तुम न पराये और न अतिथि हो। बल्कि हमारे ही पुत्र और निकटतम प्रिय आत्मीय हो।

हमारी आँखों को अपने दर्शन से प्यासी रहने के लिये तृषित न छोड़ जाओ।

× × ×

तदनन्तर मन्दिरों के पुजारियों और पुजारिनों ने उनसे कहा—

समुद्र की लहरों को हमारे बीच वियोग की दीवार खड़ी न करने दो; और बीते हुए साल, जो तुमने हमारे साथ व्यतीत किये हैं, केवल स्मृति-विषय न बनाओ।

हमारे बीच तुम चैतन्य आत्मा की तरह रमे हो और तुम्हारी छाया हमारे ललाट की आभा रही है।

हमने तुमसे अतिशय प्रेम किया, पर हमारा प्रेम मौन था। मौन के आवरण में आवृत्त रह कर अब वही प्रेम चीत्कार कर उठा है—तुम्हारे सामने बे-पर्द हो गया है। और यह सनातन सत्य फिर सामने आया कि 'विदाई की घड़ियाँ ही प्रेम की गहराई को मापती है।'

फिर उस के श्रद्धालू बड़ी संख्या में आये जिन्हों ने बड़ी अनुनय-विनय की कि वह उन से विदा न हो। परन्तु वह मौन रहा। केवल उस ने अपना सिर झुका लिया। और जो उस के समीप खड़े थे, उन्हों ने देखा कि उस के वक्षस्थल पर आँसुओं की धारा टपक रही है।

तदुपरान्त सब लोग मन्दिर की ओर चल पड़े।

वहां एक आश्रम से अलमित्रा नाम की स्त्री बाहिर आयी, जो ब्रह्मवादिनी थी।

आँखों में अपार वात्सल्य भर, उसने उसे देखा। यह वही थी, जिसने उसे पहिले दिन अपना विश्वास देकर आत्मीय बनाया था।

उसने उनका इन शब्दों से स्वागत किया—

ओ परम तत्व के शाश्वत शोधक! ईश्वर के दूत! तुमने अपने देश को जाने वाले जहाज़ की बहुत लम्बे काल तक बाट जोही है।

और अब जहाज़ आ गया है—तुम्हें अब जाना ही होगा।

अतीत की स्मृतियों और आने वाले दिनों के सपनों की गहरी उत्कंठा तुम्हारे मन में जाग रही है।

हमारे प्रेम की डोर तुम्हें बाँध कर नहीं रोकेगी। हमारा स्वार्थ तुम्हारे पैरों की ज़ंजीर नहीं बनेगा।

लेकिन करबद्ध हमारी यही विनती है कि विदा होने से पहिले, हमें उस 'सत्य' के सम्बन्ध में बतला जाइये; जो आप जानते हैं।

हम उस 'सत्य' की दीक्षा अपनी संतान को देंगे, और वे उसके आलोक से अपने आने वालों का पथ आलोकित करेंगे। वह ज्योति सदा जलती रहेगी।

तुम्हारे अकेलेपन में भी हमारी चिन्तना तुम्हारे संग रही है। तुमने सदा जागते रह कर हमारी निद्रा की स्मिति और रुदन का साक्षात् अनुभव किया है!

इस लिये अब जो कुछ हमारा स्वरूप है···हाँ वह स्वरूप जो जन्म और मृत्यु के बीच होता है—उसके मनन के रहस्यमय अनुभव को हम पर प्रगट करो।

तब वह उस जन-समुदाय को सम्बोधन करके बोला—आर्फलीज के निवासियो! तुम्हारे अन्तर में जो अनुभूति जाग रही है, उसके सिवाय मैं भी तुमसे क्या कह सकता हूँ!

प्रेम—

अलमित्रा बोली—हमें प्रेम के सम्बन्ध में कुछ कहिये।

उसने अपना मस्तक उठा कर अपनी दृष्टि नगर निवासियों के उदास चेहरों पर डाली। सब पर एक गंभीर शांति की मुद्रा छा गई। उच्च स्वर से उसने कहना शुरू किया—

जब प्रेम तुम्हें संकेत करे, तो बिना संकोच उसके अनुचर हो जाओ। भले ही उसकी राह विकट, पथरीली और ढालू हो।

जब उसके पंख तुम्हें ढाँपने के लिये फैलें तो सिमट कर उनमें समा जाओ। भले ही उनमें छिपे काँटे तुम्हें घायल कर दें।

जब वह तुम से कुछ कहे, तो उस पर अटल विश्वास करो। भले ही उसके शब्द तुम्हारे सुनहले सपनों

को पतझर के पीले-पके पत्तों की तरह भूमि पर बखेर दें।

इस बात को मत भूलो कि प्रेम यदि तुम्हारे मस्तक पर इस लोक में मुकुट रखता है, तो फाँसी का फँदा भी तुम्हारे गले में डाल सकता है।

वही तुम्हारे जीवनोद्यान के विकास के लिये निरर्थक शाखाओं की काँट-छाँट भी करता है!

और जब वह तुम्हारे प्रेम के शिखर पर आरूढ़ होकर सूर्य की किरणों पर झूमने वाली तुम्हारी जीवन शाखाओं को चूमता है, तब उसके साथ ही वह उस पौधे की जड़ों को झकझोरने के लिये पृथ्वी के नीचे भी उतरता है।

धान की बालियों की तरह वह तुम्हें अपने आंचल में ढाँप लेता है।

और रौंदता है तुम्हारा रूप निखारने के लिये।

झकझोरता है तुम्हें भुस से अलग करने के लिये।

पीसता है तुम्हें दूध सा साफ़ बनाने के लिये।

गूँधता है तुम में विनय लाने के लिये।

और अन्त में तुम्हें पवित्र नैवेद्य बना लेता है—ताकि तुम परम देव का पावन भोजन बन सको।

ये सब अनुष्ठान वह इसी निमित्त करता है कि तुम्हें अपने अन्तर के रहस्य का ज्ञान हो, और उस ज्ञान-द्वारा जीवन के उस रहस्य का ही तुम अंश बन जाओ।

किन्तु इन कष्टों से डर कर यदि तुम केवल प्रेम की

विश्रान्ति और प्रेम के विलास की तलाश में रहे, तब अपनी नग्नता को बालियों के पर्दों में ही ढके रहने दो, और प्रेम के कंटीले पथ से दूर रहो।

और एक ऐसे संसार में चले जाओ…।

जहाँ तुम हँसोगे पर तुम्हारी हँसी अधूरी और नीरस होगी,

तुम आँसू बहाओगे पर तुम्हारे अश्रुकण पलकों से निकलते ही शुष्क हो जायेंगे।

प्रेम दान करता है तो केवल प्रेम ही,

और प्रतिदान लेता है तो केवल प्रेम ही।

प्रेम न किसी पर अधिकार जमाता है, और न स्वयं किसी से अधिकृत होता है। क्योंकि प्रेम की पूर्ति प्रेम में ही है।

जब तुममें प्रेम की प्रतीति हो, तो यह मत कहो कि प्रभु मेरे हृदय में है। बल्कि यह कहो कि प्रभु के हृदय में मैं हूं।

मत सोचो कि तुम प्रेम के कंटकाकीर्ण मार्ग का पथ-प्रदर्शन कर सकोगे। क्योंकि प्रेम ही—यदि तुम पात्र हुए—तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करेगा।

प्रेम का लक्ष्य स्वतः कृतार्थ होने के सिवाय कुछ नहीं।

फिर यदि तुम प्रेम करो और तुम्हारे तृषित मन में कोई अभिलाषा उठे तो—

तुम नदी की उस धारा की तरह अजस्र बहते रहो, जो रात के सूने में मधुर गायन गुनगुनाती बहा करती है।

प्रेम की असीम कोमलता का अनुभव करो और अपने प्रेम की अनुभूतियों से स्वयं घायल हो जाओ।

और रुधिर के निकलने की चिन्ता न करते हुए उस घाव के रसास्वादन में मस्त हो जाओ।

प्रभात में इस प्रकार जागो कि तुम्हारा हृदय-पक्षी अपने डैनों को फैलाये हुए हो।

और प्रभु का आभार मनाओ कि प्रेम भरा जीवन व्यतीत करने के लिये एक और दिन प्राप्त हो गया।

दिन के मध्याह्न में विश्राम करो, प्रेम के सुख-सपनों में।

और दिन ढलने पर प्रेम की कृतज्ञता से भरे हृदय के साथ घर आ जाओ।

और तब मन में अपने प्रियतम के हित मंगल प्रार्थना और ओठों पर उसकी स्तुति-गान भर कर सो जाओ।

विवाह—

तब अलमित्रा ने विनती की—गुरुदेव ! विवाह क्या है ?

उन्होंने जवाब दिया—

तुम दोनों ने एक साथ ही जन्म लिया और साथ-साथ ही तुम रहोगे।

जब मृत्यु के श्वेत पंख तुम्हारे जीवन के कणों को बखेर देंगे तब भी तुम्हारा साहचर्य नहीं टूटेगा।

प्रभु की मौन स्मृति में भी तुम्हारा सम्बन्ध सदा अविच्छेद्य रहेगा।

किन्तु, इस सहत्व में कुछ अवकाश अवश्य रहे।

तुम दोनों के बीच जो अवकाश रहेगा, उसमें देवलोक की किरणें नृत्य करेंगी।

तुम परस्पर प्रेम करो, किन्तु बंधनों से स्वतन्त्र रह कर।

वह प्रेम कभी न जुड़ने वाले सागर के दो किनारों की

तरह दो आत्माओं के बीच अलग अलग सदा लहराता रहे।

प्रेम की राह में तुम एक दूसरे का प्याला भरो, किन्तु एक ही प्याले से पीने की कोशिश मत करो।

अपनी रोटी में से एक दूसरे को हिस्सा दो परन्तु एक ही रोटी को दोनों मत खाने बैठ जाओ।

तुम दोनों मिल कर गाओ—नाचो और आनन्द मनाओ लेकिन पृथक् २ रह कर।

वीणा के तार एक ही गत के साथ कांपते हैं, लेकिन रहते पृथक २ ही हैं।

अपनी इच्छा से अपने हृदय को परस्पर अर्पण करो। किन्तु एक दूसरे की अधीनता स्वीकार मत करो।

क्योंकि तुम्हारे हृदयों का स्वामी केवल जगन्नियन्ता प्रभु ही हो सकता है।

एक संग खड़े होओ, किंतु बहुत समीप नहीं।

क्योंकि मन्दिर के स्तम्भ भी अलग अलग खड़े होकर मन्दिर की मीनारों का भार सहन करते हैं।

और देवदार तथा सरों के वृक्ष एक दूसरे की छाया में नहीं पनपते।

सन्तान—

तब एक बच्चे को छाती से चिपटाये हुए एक तरुणी ने कहा—गुरुवर! सन्तान के बारे में कुछ उपदेश कीजिए।

उन्होंने उत्तर दिया—

तुम्हारी संतान तुम्हारी संतान नहीं है।
वे जीवन की उत्कट कामना का ही फल है।

उन्होंने तुम्हारे माध्यम से ज़रूर जन्म लिया है किंतु तुम निमित्त मात्र हो।

कुछ काल तुम्हारे साथ रहने से ही वे तुम्हारी सम्पत्ति नहीं बन जाते।

तुम उन्हें अपना प्यार दे सकते हो, अपने विचार नहीं।
क्योंकि विचार वे अपने साथ लाये हैं।

उनके शरीर को घर देना मात्र ही तुम्हारे हाथ है, उनकी आत्मा को तुम बंदी नहीं बना सकते।

क्योंकि उनकी आत्मा का निवास गहन भविष्य के मन्दिर में है, जिसे तुम्हारी दृष्टि स्वप्न में भी नहीं देख सकती।

अपनी संतान को अपने सदृश बनाने का प्रयत्न त्याग दो। उनके समान होने की कोशिश भले ही कर लो।

क्योंकि जीवन पीछे नहीं मुड़ता, न ही भूतकाल की सींखचों में कैदी रहता है।

तुम तो धनुष मात्र हो, जिनसे संतान रूपी चैतन्य बाण छोड़े गये हैं।

धनुर्धारी अनन्त में अपना लक्ष्य बाँध कर भरपूर शक्ति से धनुष को झुकाता है ताकि उसके बाण धनुष से निकलते ही अधिक से अधिक दूरी पर वेग से जायें।

तुम धनुर्धारी के हाथ में धनुष बन कर झुकने में ही आह्लाद अनुभव करो। क्योंकि उसे अपना गगनभेदी वेगवान बाण भी उतना ही प्रिय है जितना अपने हाथ का दृढ़ धनुष।

दान—

तब एक लक्ष्मीपुत्र ने कहा—गुरुदेव ! दान क्या है ?

उन्होंने उत्तर दिया—

जब तुम कोई दान देते हो, तो कोई ऐसा महान् कार्य नहीं करते।

परंतु जब तुम अपने मन अथवा अपने स्वत्व का कुछ अंश देते हो तब ही वास्तव में कुछ दान करते हो।

क्योंकि तुम्हारे पास उन वस्तुओं के अतिरिक्त है ही क्या जिनको तुम केवल इस डर से संचय करते हो कि कहीं कल उनकी ज़रूरत न पड़ जाय।

और कल ?··यह कल उस दूरदेशी श्वान को क्या दे सकता है, जो देव-धाम के यात्रियों का अनुचर होकर अनन्त के पल पल में बनने बिगड़ने वाले पथ-हीन बालू में कल की संरक्षा के निमित्त हड्डियां गाड़ता है।

और यह ज़रूरत का डर भी क्या है ? केवल एक ज़रूरत ही तो।

तुम्हारा ताल भरा होने पर भी तुम्हें जिस प्यास का भय बना रहे, वह तृष्णा है, वह कभी शान्त नहीं हो सकती।

कुछ ऐसे भी दानी हैं जो संचय में से थोड़ा सा देते हैं, और अपने यश के लोभ से देते हैं। उनकी यह कामना उस दान को तुच्छ और निष्फल बना देती है।

और कुछ ऐसे भी हैं, जो अपने थोड़े से संचित धन में से भी दान दे डालते हैं। यही हैं जो जीवन में, और प्रभु की विपुल उदारता में अतुल श्रद्धा रखते हैं। उनकी थैली कभी खाली नहीं होती।

और कुछ वह हैं जो प्रसन्न होकर देते हैं। उनकी प्रसन्नता ही उनकी उदारता का पुरस्कार है।

और कुछ ऐसे भी हैं, जो कष्ट से देते हैं, यह कष्ट ही उनका दण्ड बन जाता है।

कुछ ऐसे भी हैं जो देते हैं और देकर कष्ट नहीं मानते, न हर्ष की अपेक्षा रखते हैं और न पुण्य अर्जन की भावना से देते हैं।

वे देते हैं—जैसे पर्वत की तलहटी का गुलाब हवा को सुरभि दान देता है।

ऐसे ही दानी पुरुषों में ईश्वर निवास करता है। और

उन्हीं की आँखों की ओट से पृथ्वी पर वरदान बखेरता है।

माँगने पर देना श्रेष्ठ है, किंतु बिन माँगे, स्वयं भिक्षुक की खोज करके उसे देना श्रेष्ठतर है।

दानी को दान देने से भी अधिक आनन्द सुपात्र को खोजने में आता है।

और सच तो यह है कि कौन चीज़ है, जो कि समेट कर रखी जा सकती है? सभी तो किसी दिन दे डालना है।

इस लिये क्यों न अभी दे डालो; ताकि देने का हर्ष तुम्हारे भाग में भी आये, तुम्हारी सन्तान के ही नहीं।

× × ×

तुम प्रायः कहते हो—हम देंगे, किंतु पात्र को देख कर।

परन्तु तुम्हारे बगीचे के वृक्ष तो यह नहीं कहते, न ही तुम्हारी चरागाह के पशुओं के झुण्ड यह आकाँक्षा रखते हैं।

वे अपना सब कुछ देते हैं। क्योंकि देने में ही उनका जीवन है, न देने में उनका विनाश।

बेशक! जो मनुष्य दिन और रात की घड़ियां गिन कर लेता है; वह तुमसे सब कुछ लेने का अधिकारी भी है।

जो जीवन के असीम पयोधि का पान करके अपने तृषित होंठों की प्यास बुझाता है वह तुम्हारे ही आँगन की तलैया से

अपना प्याला भरने का भी अधिकार रखता है।

और तुम हो ही क्या कि दुनिया के लोग तुम्हें अपने घाव खोल कर दिखायें—अपने को बेपर्द करें, ताकि तुम उनके नंगे अंगों की झांकी ले सको और उनके स्वाभिमान को नग्न रूप में देख सको।

क्यों न तुम भी यह देखो कि तुम भी दाता—दान का निमित्त-बनने के योग्य हो या नहीं। सचाई तो यह है कि जीवन की सरितायें सब ही एक दूसरे को सींचती है। मनुष्य मनुष्य का आधार है।

तुम दाता नहीं, साक्षीमात्र हो।

और ऐ भिक्षार्थियो—तुम सभी भिक्षार्थी हो! कृतज्ञता का ऋण भार मत ढोओ। नहीं तो व्यर्थ ही दाता को भी तुम्हारा बोझ ढोने में हिस्सेदार बनना पड़ेगा।

बल्कि उठो और इस नयी जीवन-शक्ति के पंखों पर दानी के साथ ही खुले आकाश में विचरो।

अन्यथा कहीं कृतज्ञ रहने की यह अतिशय सतर्कता दाता की उदारता पर कलंक न लगा दे, जिसका बीज धरती माता से उठाया गया है।

और जिसका पिता वह है जो बिन माँगे ही सदा देता है।

खान-पान—

तब एक भोजनालय के संचालक ने कहा—गुरुवर ! कुछ 'खान-पान' के सम्बन्ध में कहिये।

उन्होंने उत्तर दिया—

भला होता अगर तुम्हें पृथ्वी का गन्ध-सेवन ही जीवित रख सकता और पत्र-पल्लवों के समान किरणें ही तुम्हें जीवन-रस से सींचने में पर्याप्त होतीं।

परंतु यदि तुम्हारी क्षुधा जीव-हिंसा के बिना शान्त नहीं होती और नवजात वत्स को उसकी माता के स्तन से छुड़ा कर ही तुम्हारी तृष्णा शांत हो सकती है, तो यह काम देवता के चरणों में अर्घ्य अर्पण करने की भावना से ही करना।

यही समझना कि वन-उपवन के इन निष्पाप जीवों की बलि—उनसे अधिक शुद्ध मानव आत्मा की परि-तुष्टि के लिये—विश्व नियन्ता की मौन आज्ञा से दी जा

15919

रही है। उनका वध करते हुए उनके प्रति स्वगत ही यह कहना :—

"जो शक्ति तुम्हारा वध कर रही है, उसके लिये मेरी भी बलि दी जायेगी।

"क्योंकि जिस क़ानून ने तुम्हें मुझ वधिक के हाथ में दिया है, वही मुझे भी मुझ से अधिक बली वधिक के हाथ में दे देगा।

"तुम्हारा रक्त और मेरा रक्त दोनों का एक ही हेतु है। एक ही विश्ववृक्ष का पोषण करना।"

× × ×

जब तुम किसी सेब को अपने जबड़ों में कुचलो तो दिल ही दिल उससे कहो—

"तुम्हारे बीज मेरी देह में जीवित रहेंगे।

"मेरे हृदय में उनकी कलियां खिलेंगी।

"उनकी गन्ध मेरा साँस बनेगी।

"और हम साथ-साथ सब मौसमों की बहार लूटेंगे।"

× × ×

कोल्हू में पीसने के लिये बसन्त में जब तुम द्राक्षोद्यान से अंगूर बटोरो, तो मन ही मन उनसे यह कहना न भूलना—

"मेरी देह भी द्राक्षोद्यान है और मेरे फल भी द्राक्षा-

कोल्हू में पिसने के लिये बटोरे जायेंगे।

"नवीन द्राक्षा-मधु के समान मुझे भी चिर काल तक बन्द बोतलों में भरे रहना पड़ेगा।"

और सर्दी में जब द्राक्षा-मधु निकालो तो मनमें उसके हर प्याले के लिये तुम्हारे मन से एक गीत निकले। वह गीत तुम्हें बसन्त के दिनों, अँगूरी बेलों तथा द्राक्षा-कोल्हू की याद अवश्य दिलाये—यह ध्यान रखना।

परिश्रम—

तब एक किसान ने कहा—गुरुवर ! श्रम के विषय में कुछ कहिये।

उन्होंने उत्तर दिया—

तुम श्रम इसलिये करते हो कि तुम धरती और आकाश, जगत और जगदात्मा की गति के साथ गतिमान रह सको।

क्योंकि श्रम के बिना तुम सदा गतिशील चर-अचर से बिछुड़ जाओगे और जीवन की उस यात्रा से पीछे रह जाओगे जो राजसी आन-बान और गरवीले दान की भावना लिये अनन्त की राह पर चल रही है।

× × ×

यह श्रम तुम्हें उस मुरली का रूप दे देता है जिसके अन्तरंग में भरे गये श्वास-निःश्वास संगीत-मय बन जाते हैं।

भला कौन होगा, जो उन चराचर के सुसंवादी स्वरों

के गायन में गूंगा रह सके।

प्रायः यह कहा जाता है कि श्रम एक शाप है और कष्ट एक दुर्भाग्य।

मैं कहता हूं—श्रम करके तुम पृथिवी माता का चिरंतन स्वप्न पूरा करते हो—जिसकी पूर्ति का भार उस स्वप्न के जन्म लेते ही तुम्हें सौंपा गया था।

सच तो यह है कि श्रम में तन मन लगा कर तुम जीवन से लौ लगाते हो।

श्रम करके जीवन का प्रेम जीतते हो और जीवन के निगूढ़तम रहस्य से प्रगाढ़ परिचय पाते हो।

कष्टों से अकुला कर यदि तुम जन्म लेने को ही असीम आपत्ति और देह को अपने ललाट पर लिखा अभिशाप मानते हो, तो भी सुनो!

केवल तुम्हारे माथे का पसीना ही उस लेख को धो सकेगा।

नास्तिक लोग कहते हैं कि जीवन अन्धेरी गुफा है। और रास्ते की बीहड़ कठिनाइयों से हार कर तुम भी यह शाप-दग्ध बात दुहराने लगते हो।

सचमुच ज़िंदगी अन्धेरी गुफा है, जब तक उसमें प्रेरणा न हो।

प्रेरणा हर हालत में अंधी है, अगर वह ज्ञानयुक्त न हो।

और सब ज्ञान मिथ्या है, यदि वह कर्म रहित हो।

और सब कर्म निरर्थक हैं, यदि प्रेममय न हों।

प्रेम-प्रेरित कर्म करके ही तुम अपने को परस्पर एक दूसरे के समीप और परमदेव के निकट लाते हो।

× × ×

जानते हो, प्रेम-प्रेरित काम क्या होता है ?

यह होता है, हृदय से निकले तन्तुओं से वस्त्र बुनना, जो अपने प्रियतम का परिधान बनेगा।

यह है अपने रुधिर और अस्थियों के गारे से मन्दिर बनाना, मानो तुम्हारे मन-चाहे मीत को ही इसमें वास करना है।

यह है कोमल हाथों से बीज बोना और पकने पर आनन्द विभोर हो फसल काटना, मानों यह तुम्हारे प्रेमी का ही आहार बनेगा।

यह है स्व-निर्मित पौधों को अपनी आत्मा के श्वासों से ही चैतन्यमय बनाना।

और यह विश्वास रखना कि कोटि-कोटि देवता तुम्हारे पास खड़े, इस निष्ठा भरे काम को बड़े चाव से देख रहे हैं।

× × ×

प्रायः मैंने तुम्हें यह कहते सुना है—मानों नींद की बेहोशी में तुम ने यह बात कही हो—कि संगमरमर के श्वेत पत्थर में आत्म-भावना को साकार करने वाला शिल्पकार उस हलवाहे से बहुत श्रेष्ठ है, जो केवल मिट्टी के खेत में अनाज बोता है।

और यह भी तुम उसी बेहोशी में कहते हो कि आकाश के इन्द्रधनुष को चित्र में उतारने वाला चित्रकार जूते बनाने वाले चमार से कहीं श्रेष्ठ है।

परंतु मैं सपने में नहीं, बल्कि जागृति के मध्याह्न में यह कहता हूँ कि बासंती हवा नभ-चुम्बी वटवृक्ष की शाखाओं और धरती पर बिछी घास की पत्तियों में भेद नहीं करती,—दोनों को एक ही प्रेम-भाव से अपनी बात सुनाती है।

वस्तुतः बड़ा वही है, जो अपने प्रेम के दान से हवा के हाहाकार को मधुर संगीत में बदल दे।

श्रम है प्रेम का ही मूर्त्तस्वरूप।

यदि तुम प्रेम से श्रम नहीं कर पाते; और मज़बूरी से करते हो,—तो बेहतर कि तुम वह बे-दिली का काम छोड़ कर मन्दिर की चौखट पर आ बैठो और उन से भीख मांग कर पेट भरो जो दिल से मेहनत करते हैं।

क्योंकि यदि तुम बे-दिली से रोटी पकाते हो, तो वह कड़वी होगी। और वह इन्सान की आधी भूख भी नहीं मिटा सकेगी।

और यह भी समझ लो कि—

यदि तुम अनिच्छा भरे दिल से द्राक्ष का रस भी निकालते हो, तो तुम्हारी अनिच्छा उसमें विष घोल देगी।

भले ही तुम गन्धर्वों के सदृश गीत गाओ, किन्तु जब तक तुम्हें गीत से प्रेम नहीं होगा, उन स्वरों में वह मधु नहीं भर सकोगे, जो आत्मा को प्रिय है।

हर्ष-विषाद—

तदनन्तर एक स्त्री ने कहा—गुरुवर ! 'हर्ष-विषाद' के विषय में कहिये।

उन्होंने उत्तर दिया—

तुम्हारा हर्ष क्या है ? तुम्हारे विषाद का ही वस्त्राभरण शून्य सत्य-रूप।

तुम्हारा वह सरोवर, जिसमें तुम्हारे हर्ष की हिलोरें उठती हैं, प्रायः तुम्हारे आँसुओं से भर जाता था।

और ऐसा हो भी क्यों न ?

यह विषाद तुम्हारी आत्मा में जितनी गहरी रेखाएँ खोदेगा, उतना ही अधिक आनन्द उसमें तुम भर सकोगे।

आज जिस प्याले में तुमने द्राक्षामधु भरा है, वह वही तो है जो कल कुम्हार की दहकती भट्टी में तप चुका है।

और आज जो बंसी तुम्हारी बे-कल आत्मा को लोरियाँ

दे रही है, वह क्या वही बाँस का टुकड़ा नहीं है जिसे कल बढ़ई ने तेज़ नश्तर से छेदा था।

हर्ष के क्षणों में अगर तुम हृदय की गहराई में झाँक कर देखोगे तो पाओगे कि आज उस हर्ष का वही कारण है जो कल शोक का था।

शोक के क्षणों में फिर दिल की गहराई में झाँक कर देखना, तुम अनुभव करोगे कि तुम सचमुच अपने कल तक के आनन्द स्थल पर ही आज आँसू बहा रहे हो।

×

तुममें से कुछ कह उठते हैं—हर्ष शोक से श्रेष्ठ है।

×

दूसरे कहते हैं—नहीं, शोक हर्ष से श्रेष्ठ है।

×

मैं कहता हूँ "दोनों साथी हैं, अविभाज्य हैं"।

दोनों साथ-साथ पैदा होते हैं। एक जब तुम्हारे पास बैठ कर जागता है, तो दूसरा तुम्हारी शैय्या पर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा होता है।

×

सत्य तो यह है कि हर्ष-शोक के बीच तुम हमेशा तराजू के पलड़ों की तरह तुले रहते हो।

×

जब तुम रीते रहते हो, तभी तराजू की तरह सम रहते हो।

जीवन-कोष का स्वामी ही जब तुम्हें अपना सोना-चाँदी तोलने के लिये ऊपर उठाये, तभी तुम्हारे हर्ष शोक के दोनों पलड़े हिलते हैं। और उन के साथ ही तुम्हारे हर्ष शोक का उतार चढ़ाव आरंभ हो जाता है।

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

घर—

तब एक कारीगर ने कहा—गुरुवर ! घर के विषय में कुछ कहिये।

उन्होंने उत्तर दिया—

नगर की चहार दीवारी में घर बनाने से पहले जंगल के वीरान में अपनी कल्पना का कुंज बनाओ।

क्योंकि जैसे तुम में, साँझ की धुँधली वेला में, घर की ओर लौटने वाला मन रहता है; वैसे ही तुम्हारे भीतर सदा दूर और एकाकी घूमने वाला मन भी वास करता है।

तुम्हारा घर है तुम्हारा ही विराट शरीर।

वह रवि किरणों में पनपता और रात की नीरवता में सोता है; और यह सपनों से भी खाली नहीं है। तुम्हारा घर भी तो स्वप्न लेता है, और स्वप्न में नगर से निकल कर कुँजों और गिरि-शिखरों पर विहार करता है।

काश ! कि मैं तुम्हारे घरों (शरीरों) को अपनी हथेली में भर

सकता और तब एक किसान की तरह उन्हें हवा में तृण-खण्डों के समान जंगलों और पर्वतों की तलहटियों में बिखेर देता।

कितना अच्छा होता जो पर्वत की घाटियाँ तुम्हारा घर और हरी पगडण्डियाँ तुम्हारी गलियां होतीं। अंगूर के सघन कुँजों में तुम एक दूसरे से भेंट करते और पृथ्वी के परिमल से सुवासित वस्त्रों को धारण करके अपने घरों को लौटते।

परन्तु शोक! अभी ऐसा नहीं हो सकता।

जाने किस भय से तुम्हारे पूर्वजों ने तुम्हें इतना निकट२ ला जोड़ा। वह भय कुछ काल और तुम्हारी नसों में बसा रहेगा। और कुछ देर और भी यह शहर की दीवार तुम्हारे घरों को तुम्हारे खेतों से विलग रखेगी।

कहो तो मेरे आफ़लीज निवासियो! भला इन घरों में तुम्हारे पास क्या है? और इन दरवाज़ों में कौन-सी मणि छिपी है, जिस पर पहरा दिया करते हो?

क्या तुम्हें शान्ति प्राप्त है—वह शान्ति जो तुम्हारी शक्तियों को प्रगट कर दे?

और क्या तुम्हारे हृदय में अतीत की स्मृतियाँ वर्तमान हैं? वह स्मृतियाँ, जो हृदय की उजली मीनारों को एक दूसरे से मिला देती है।

और क्या तुम्हारा हृदय सौंदर्य से परिपूर्ण है ? ···उस सौन्दर्य से; जो हृदय को काठ-पत्थर के घरों के मोह से दूर गिरिशिखरों की ओर ले जाता है।

कहो, क्या यह तुम्हारे घर में है ?

अथवा वहाँ केवल विलास और भोग की लालसा है, जो चोर की तरह तुम्हारे घर में अतिथि के रूप में प्रवेश करके यजमान और अन्त में स्वामी बन बैठती है।

यही नहीं, फिर वह जादूगरनी भी बन बैठती है और छलबल से तुम्हारी इच्छाओं को कठपुतली बना कर तुम्हें मनमाना नाच नचाती है।

इसके हाथ रेशम के और दिल फौलाद का होता है।

यह तुम्हें लोरियाँ देकर नींद में बेहोश कर देती है—केवल इसलिये कि सिरहाने खड़ी होकर वह तुम्हारा उपहास कर सके।

वह तुम्हारी जाग्रत-शक्तियों की विडम्बना करती है, और अन्त में काँच के मधुर वसनों की तरह उन्हें मखमली गद्दों में लपेट देती है।

याद रखना ! सदा ही संसारी सुखों की लालसा आत्मा की उत्कट भावनाओं का खून कर देती है और तब उसकी श्मशान यात्रा में साथ देती है, उसका उपहास मात्र करने के लिये।

पर ओ देव लोक की सन्तानो ! तुम सुख में दुःखी और व्याकुल रहते हो। तुम न भयभीत हो सकोगे और न पथ-भ्रष्ट किये जा सकोगे।

तुम्हारा घर जीवन-नाव का लंगर नहीं बनेगा, परंतु, मस्तूल का काम देगा।

वह घाव की झिल्ली नहीं बनेगा, जो कि घाव को ढक लेती है, बल्कि पलक···जो आँख की रक्षा करती है।

घर की चौखट में से गुज़रने के लिये तुम्हें अपने पंख समेटने न पड़ेंगे। और उसकी छत से टकराने के डर से तुम्हें मस्तक नवाने को विवश न होना पड़ेगा। या घर की दीवारें लड़-खड़ा कर गिर न पड़ें, यह डर तुम्हारा साँस लेना भी शंकित न कर सकेगा।

तुम्हें उन समाधियों में नहीं रहना पड़ेगा···जो मृतकों ने जीवितों के लिए बनाई थीं।

वह घर कैसा ही भव्य और विशाल क्यों न हो, तुम्हारे गूढ़-तत्त्व का विश्राम-स्थल नहीं बन सकता।

क्योंकि तुम में जो असीम बसता है उसके घर अंबर के दो छोर हैं, जिसका द्वार है प्रभात की रवि किरणें और जिसके झरोखे हैं रजनी के नीरव गीत।

वस्त्र—

तब एक जुलाहे ने कहा—गुरुदेव ! कुछ वस्त्रों के विषय में कहिये।

उन्होंने उत्तर दिया—

तुम्हारे वस्त्र, तुम्हारे रूप का सौन्दर्य तो छिपा लेते हैं, किन्तु कुरूपता को नहीं छिपाते।

वस्त्रों द्वारा तुम अपने अंगों को एकान्तिक स्वतन्त्रता देना चाहते हो, पर वे बन जाते हैं तुम्हारे शरीर की जंज़ीरें।

अच्छा होता कि तुम्हारे वस्त्र न होते—और तुम्हारी त्वचा सूर्य और हवा के साथ अधिक से अधिक परिमान में संसर्ग में आती।

क्योंकि जीवन का प्राण सूर्य की किरणों में और जीवन का हाथ हवा में है।

× × ×

तुम में से कुछ कहते हैं इन वस्त्रों को उत्तरी हवा ने बुना है।

मैं भी कहता हूँ, बेशक ! उत्तरी हवा ने !

लेकिन, लज्जा ही उसके करघे हैं और नसों की कोमलता ही उसका सूत ।

और वस्त्र बुनने के बाद उसने उसी जंगल में अट्टहास किया ।

स्मरण रखो, लज्जा केवल मलिन आँखों के घात से त्राण पाने की ढाल है ।

मलिन भावना न रहे तो लज्जा केवल एक बन्धन और मन का रोग रह जायेगी ।

और यह भी न भूलना कि धरती माता तुम्हारे नंगे पैरों के स्पर्श से हर्ष पाती है, और हवा को तुम्हारे केश-कुंतलों से खेलना भाता है ।

क्रय-विक्रय—

तब एक व्यापारी ने कहा—गुरुदेव ! क्रय-विक्रय के विषय में कहिये।

उन्होंने उत्तर दिया—

पृथ्वी ने तुम्हें धन-धान्य की भेंट दी है। उसे अपनी अँजलियों में कैसे भरा जाता है, यह तुम जान लो तो तुम्हें कभी कोई कमी न रहे।

पृथ्वी की उस देन के विनिमय में ही तुम्हारा भण्डार भरा रहेगा....और तुम सदा पूर्णकाम रहोगे।

किन्तु यदि वह विनिमय प्रेम और न्याय से न हो, तो यह सौदा कुछ को लोभी और कुछ को भिखारी बना देगा।

× × ×

ओ समुद्रों, खेतों और द्राक्षोद्यानों में परिश्रम करने वालो ! तुम जब कपड़ा बुनने और मिट्टी घड़ने वाले शिल्पियों से बाज़ार में मिलो तब—

धरती माता की आत्मा का आवाहन करके अपनी तुला के पलड़ों और हिसाब किताब को शुद्ध कर लेना—जिनसे तुमने माल तोलना है !

और अपने सौदे में उन खाली हाथ आने वालों को हस्ताक्षेप न करने देना—जो मीठे २ शब्द उच्चारण करके तुम्हारी मेहनत का फल लूटना चाहते हैं।

उन्हें कहना :—

हमारे साथ खेतों में आओ या हमारे संगियों के साथ समुद्र-तट पर जाकर धन बटोरो।

क्योंकि धरती और समुद्र का अशेष कोष हमारे ही लिये नहीं, तुम्हारे लिये भी विपुल उदार है।

× × ×

यदि तुम्हारे सौदे के बीच नाचने-गाने या बंसी बजाने वाले आयें, तो उनके गुणों का भी मूल्य लगाना।

क्योंकि उन्होंने भी इसी धरती से अपनी झोली भरी है। उनकी झोली में जो मोती हैं, वे कोमल सपनों से बने हैं, वे तुम्हारी आत्मा के प्रसाद हैं।

× × ×

और उस हाट को छोड़ने से पहिले यह देख लेना कि उस बाज़ार से कोई अपनी राह खाली हाथ तो नहीं गया।

क्योंकि ब्रह्माण्ड का पोषक भगवान तब तक पवन के झोकों पर चैन से नहीं सोयेगा, जब तक तुम्हारे मध्य क्षुद्र से क्षुद्र जीव की भी कामना पूर्ण नहीं हो जायेगी।

अपराध और दण्ड—

तब शहर के न्यायपतियों में से एक सामने आकर बोला—गुरुदेव ! 'अपराध और दण्ड' के विषय में कुछ कहिये !

उन्होंने उत्तर दिया—

जब तुम्हारा मन हवा के पंखों पर आत्मा की परिधि के बाहिर मनमाना उड़ता है—

तभी तुम अकेले और अरक्षित होकर दूसरों का अकल्याण करते हो। अकल्याण दूसरों का नहीं, परन्तु स्वयं अपना अकल्याण करते हो।

उसी अतिक्रमण का यह दण्ड है कि तुम देवता के द्वार पर कुछ देर तक उपेक्षित खड़े रह कर द्वार खट-खटाओ।

× × ×

तुम्हारी दैवी भावना सागर के समान है।

वह सदा निर्मल रहती है।

और वह आकाश की तरह उन लोगों को ऊपर उठाती

है जो पंख फैलाए हुए हों।

परन्तु ऐसा कहना चाहिये कि तुम्हारी दैवी भावना सूर्य के समान है। उसे छिद्रान्वेषण के लिये न साँपों के बिलों की ज़रूरत है और न चींटियों के छिद्रों की।

किन्तु तुम्हारी दैवी भावना अकेली ही तुम्हारे भीतर नहीं रहती।

तब भी तुम में कुछ मानव भाव है और साथ ही बहुत से अमानव भाव भी, वह है एक छाया सी धूमिल रेखा, जो धुंधले में अर्धनिद्रित सी जागृति और प्रकाश के लिये भटकती रहती है।

मैं उसकी नहीं, बल्कि तुम्हारे मानव भावों की व्याख्या करता हूं।

क्योंकि वही है, जो अपराध और दण्ड का विवेक रखता है, नाकि तुम्हारे भीतर का वह दानव, जिसकी आँखों ने कभी प्रकाश ही नहीं देखा।

× × ×

प्रायः मैंने तुम्हें अपराधी के विषय में ऐसे कहते सुना है मानो वह तुम्हारे बीच का नहीं, बल्कि कोई आगन्तुक है, जिसे तुम्हारे संसार में प्रविष्ट होने का अधिकार नहीं था।

किन्तु, मैं कहता हूं, जैसे तुम्हारे बीच कोई परम-पुण्यशील मानव अपनी शक्ति भर ऊँचा उठकर भी उस

शिखर पर नहीं पहुँचता जो मानवमात्र के अन्तर में अवस्थित है,

वैसे ही कोई अधम से अधम मानव भी गहरे से गहरे गर्त में गिर कर भी उस निचली सतह तक नहीं गिरता, जो मानवमात्र के अन्तर में है।

और जैसे वृक्ष के एक पत्ते का पीला पड़ना पूरे वृक्ष की मूक सहमति के साथ होता है।

वैसे ही समाज का कोई व्यक्ति समाज की मूक सहमति के बिना अपराध नहीं करता।

तुम संपूर्ण मानव साथ-साथ चलते हुए एक ही पथ के पथिक हो।

तुम मार्ग हो और तुम ही बटोही।

जब तुम्हारे मध्य का कोई पथिक राह में ठोकर खाकर गिरता है, तो गिर कर भी वह अपने पीछे आने वालों को ठोकर खाने से सावधान कर देता है। गिरने वाला तो बेचारा उन शीघ्रगामी साथियों की असावधानता के कारण गिरा जिन्होंने मार्ग का वह पत्थर नहीं उठाया।

\+ \+ \+

और यह भी एक कटु सत्य है कि—

हत्या के लिये वह भी उत्तरदायी है, जिसकी हत्या हुई है।

और चोरी के लिये वह भी उत्तरदायी है, जिसके घर चोरी हुई है।

क्योंकि सज्जन दुर्जन के अपराधों के लिये निर्दोष नहीं ठहराये जा सकते।

निष्कलङ्क व्यक्ति पापियों के कर्मों से बरी नहीं हो सकते।

अधिक क्या अपराधी प्रायः आहत व्यक्ति का शिकार होता है।

और प्रायः यह देखा गया है कि घोषित अपराधी निर्दोष होता है और निष्कलंक तथा निष्पाप लोगों के पापों का भार अपने सिर पर उठा लेता है।

सच तो यह है कि तुम भले को बुरे से और दुष्ट को सज्जन से अलग नहीं कर सकते।

क्योंकि वे दोनों सूर्य के सामने एक साथ खड़े हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार सफेद और काले धागे इकट्ठे बुने गए हों।

और जब काला धागा टूटता है, तो जुलाहे को सारे ताने-बाने की छान-बीन करनी पड़ती है, साथ ही करघे की भी।

\+ + +

यदि तुम में से कोई असाध्वी पत्नी का कलङ्क न्याय-तुला पर तोलने लगे तो उसे चाहिये कि वह उसके पति के हृदय को भी उसी तुला से तोले और उसी माप-दण्ड से उसकी आत्मा को परखे।

और वह मनुष्य, जो अपराधी को कोड़े मारता है उसे चाहिये कि कोड़े मारने से पहले उस जीव के मन की हालत का भी अनुमान लगा ले जिसे पीड़ित कहा जाता है।

और यदि तुम में से कोई धर्म के नाम पर दण्ड देता है और अधर्म के वृक्ष पर कुल्हाड़ी चलाता है,तो उसे चाहिये कि उसकी जड़ पर दृष्टि डाले।

तब निरपवाद वह यही पायेगा कि भले-बुरे, सफल-विफल वृक्ष की जड़ें पृथिवी के मौन अन्तःकरण में एक दूसरे की भुजाओं में गुंथी हुई हैं।

तुम में से कौन है जो सच्चा न्याय कर सकता है। तुम उस व्यक्ति को क्या दण्ड दोगे। जो शरीर से पाप रहित पर मन से पापी है।

उसे कौन सा दण्ड दोगे, जो दूसरों का वध करके स्वयं अपनी आत्मा का भी वध कर लेता है।

और उस पर कौन सी धारा लागू करोगे, जो प्रत्यक्ष ठग और लुटेरा है, किन्तु परोक्ष में स्वयं भी दूसरों से सताया और ठगा गया है।

× × ×

और जिनकी अन्तर्वेदना उनके कुकर्मों से कहीं बढ़ चुकी है, उन्हें क्या दण्ड दोगे ?

क्या वह अनुसंताप ही न्याय नहीं, जो उसी क़ानून की

कृति है, जिसके तुम अनुयायी हो ?

तुम्हारा शासन निर्दोष के मन में वह अनुसंताप नहीं भर सकता और न ही दोषी के मन को उससे हल्का कर सकता है।

वह बिन बुलाए रात को स्वयं प्रवेश करता है, ताकि दोषी मनुष्य जागे और अपने अपराधों पर दृष्टिपात करे।

तुम, जो न्याय समझने का दावा भरते हो, किस प्रकार न्याय के मौलिक सिद्धान्तों को समझ सकोगे जब तक कि तुम मनुष्य के शुभ तथा अशुभ कर्मों से पूर्णतया परिचित नहीं हो जाते।

और तभी तुम जान जाओगे कि उन्नत और पतित दोनों एक ही हैं जो दानवी-भावना-रूपी निशा के अंधकार और दैवी-भावना-रूपी दिवस के आलोक के मध्य में, गोधूलि की वेला में घड़ी गई छाया-मूर्तियाँ हैं।

हाँ, उस समय तुम पर यह प्रकट हो जायेगा कि देव-स्थान के शिखर का पत्थर उसकी नींव की सबसे नीची सतह में गड़े पत्थर से किसी प्रकार भी अधिक ऊँचा नहीं।

क़ानून—

तब एक वकील ने कहा—क़ानून के सम्बन्ध में कुछ कहिये।

वह बोले—

तुम क़ानून की इमारत बनाने में रस लेते हो और फिर उसे अपने ही हाथों तोड़ कर तुम्हें और भी अधिक प्रसन्नता का लाभ होता है।

उसी तरह, जैसे समुद्र तट पर खेलते बालक बड़ी लगन से बालू के घरौंदे बनाते हैं और दूसरे क्षण उसे पैर की ठोकरों से तोड़ कर ताली बजाते हैं।

परन्तु जब तुम समुद्र तट पर रेत के प्रासाद बनाते हो तो समुद्र तुम्हारे लिये और रेत ढोकर लाता है। और जब तुम अपने अल्हड़पन में उन महलों को गिरा देते हो, तो समुद्र तुम्हारे उल्लास में अपना हास मिला देता है।

समुद्र सदा निष्कपटों के साथ हँसता है।

× × ×

लेकिन उन लोगों के सम्बन्ध में क्या कहा जाए, जिनके लिये जीवन समुद्र के समान नहीं, और जो मनु-निर्मित कानून को रेत के घरौंदे नहीं मानते।

परन्तु जो जीवन को चट्टान और क़ानून को (छैनी) मानते हैं, जिससे वे उस चट्टान पर अपनी रुचि अनुसार मूर्तियाँ बनाते हैं।

उस पंगु को हम क्या कहें, जो नर्तकी को नफ़रत से देखता है।

और उस कोल्हू के बैल को क्या कहें जो अपने जूए को वरदान समझ कर, वनविहारी हिरणों को आवारा समझता है।

और उस बूढ़े अजगर को क्या कहें, जो अपनी केंचुली उतारने में असमर्थ होकर दूसरों समर्थों को नंगा और निर्लज्ज मानता है।

और उन मेहमानों को क्या कहें जो प्रीति-भोजों में सब से पहले पधारते हैं और भूख से अधिक खाकर लौटते हुए कहते जाते हैं कि सब दावतों में क़ानून की अवज्ञा होती है। और प्रीति-भोज देने वाले कानून के दुश्मन हैं।

उनकी बाबत यही कहा जा सकता है कि वे भी सूर्य की रौशनी में खड़े हैं, लेकिन सूर्य की ओर पीठ करके।

वे केवल अपनी छाया देखते हैं और उस छाया को ही क़ानून मानते हैं।

वे सूर्य को छाया का निर्माता मात्र समझते हैं।

क़ानून मानना है भी क्या ? सिवा ज़मीन पर झुक कर पृथ्वी पर अपनी छाया के अनुसरण करने के।

लेकिन तुम जो सूर्य की ओर मुख करके चलते हो, क्या तुम्हारी छाया तुम्हें पकड़ सकती है ?

फिर जब तुम हवा के पंखों पर उड़ते हो, तो कौन सा वायु-दिशा-निर्देश-यंत्र तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करेगा ?

मानव-कानून तुम्हारे हाथों को अपनी पराधीनता की साँकल तोड़ने में रुकावट नहीं डालेंगे, अगर ज़ंजीर तुम किसी के क़ैदखाने के दरवाज़े पर नहीं तोड़ते।

क़ानून का भय तुम्हारे नृत्य में बाधक नहीं बनेगा, यदि तुम्हारे पैर किसी दूसरे घर की दहलीज़ से ठोकर न खायें।

और कौन है जो तुम्हें सज़ा दे, अगर तुम बागी हो कर जन-पथ पर रुकावट न डालो।

आर्फ़लीज के निवासियो ! तुम अपने नग्गाड़ों को वस्त्रों

में लपेट कर उसकी ध्वनि दबा सकते हो; वीणा के तारों को ढीला करके इस की स्वर-लहरियों को शांत कर सकते हो; पर चण्डोल को आकाश में चहकने से नहीं रोक सकते।

स्वतन्त्रता—

एक वक्ता ने कहा—स्वतन्त्रता के संबंध में कुछ कहिये।

उन्होंने कहा—

नगर-द्वार और अपने घरों में मैंने तुम्हें स्वतंत्रता-देवी की पूजा और स्तुति के लिये साष्टांग दण्डवत् करते देखा है।

जैसे गुलाम अपने अत्याचारी प्रभु को सर नवाते हैं और उसकी स्तुति करते हैं, यद्यपि उनका निर्दय प्रभु उनका वध भी कर देता है।

हाँ, देवालयों की लता-कुँजों और कोट की छाया में तुम में से सब से अधिक स्वतंत्रता के पुजारियों को मैंने स्वतंत्रता की हथकड़ी पहने और अपने कंधों पर उसका जुआ उठाए देखा है।

और यह देख कर मेरा दिल ख़ून के आँसू रो उठा; क्योंकि तुम तभी मुक्त हो सकते हो, जब निर्बन्धता की इच्छा भी तुम्हें न बेध सके, और जब स्वतंत्रता को अपना लक्ष्य और

उद्देश्य कहने के लोभ से भी मुक्त हो जाओ।

वास्तव में तुम तभी स्वतंत्र होगे जब तुम्हारे दिन चिन्ता-ग्रस्त और रातें तृष्णा और शोकपूर्ण होंगी।

परन्तु इससे भी अधिक स्वतन्त्रता का अनुभव तुम उस समय करोगे जब ये आकांक्षायें और चिंताएँ तुम्हें घेर लें';

और तुम उनसे भी ऊपर उठ जाओगे ····बिल्कुल नग्न और स्वतन्त्र।

\+ + +

और तुम अपनी दिवा-रात्रि के बन्धनों से मुक्त हो भी कैसे सकते हो, जब तक कि तुम उस ज़ंजीर को तोड़ नहीं देते, जो तुमने अपनी उदय की वेला में ही अपने अतीत के पैरों में बाँध ली थी।

सच तो यह है कि आज़ादी की भावना ही सबसे दृढ़ ज़ंजीर है, जिसकी कड़ियाँ सूर्य में चमक कर तुम्हारी आँखों को चुंधियाँ देती हैं।

\+ + +

स्वतन्त्र होने की विधि क्या है?····यही कि अपने व्यक्तित्व के अंशों को परे फेंक देना।

यदि अन्याय मूलक क़ानूनों को मिटाने का नाम ही मुक्ति है, तो याद रखो कि ये क़ानून तुमने अपने हाथों अपने ललाट पर लिखे हैं।

तुम केवल विधान की पुस्तकें जला कर उन्हें नहीं मिटा सकते। न ही अपने न्यायपतियों के ललाट पर पानी डाल कर उन्हें धो सकते हो, चाहे सौ समुद्र का पानी उंडेल दो।

और यदि यह कोई प्रजापीड़क राजा है जिसे तुम गद्दी से उतारना चाहते हो, तो पहिले देखो कि क्या तुम्हारे हृदय में बना हुआ उसका सिंहासन नष्ट हो गया है?

एक अत्याचारी राजा स्वातंत्र्य और गौरव-गर्विता प्रजा पर शासन नहीं कर सकता जब तक उनकी स्वतंत्रता में स्वेच्छाचार और गर्व में निर्लज्जता न मिली हो।

और यदि यह कोई ऐसी चिंता है जिसे तुम दूर फेंकना चाहते हो, तो स्मरण रखो कि वह चिन्ता तुमने स्वयं अपने लिये चुनी है, तुम पर किसी ने बलपूर्वक ठोंसी नहीं।

और यदि यह कोई भय है जिसे तुम दूर करना चाहते हो तो यह समझ लो कि उसका आसन तुम्हारे हृदय में है, न कि उसके हाथों में जिससे कि तुम भयभीत हो। जब तक तुम स्वयं उस भय को अपने अन्तस्थल से परे न फेंक दो तब तक मित्र-शत्रु का निर्णय न कर सकोगे।

निश्चय ही ये सब वस्तुएँ तुम्हारे अस्तित्व में वर्तमान हैं, चाहे वे तुम्हें अभिलषित हों या भयप्रद, चाहे वे तुम्हारी रुचि के अनुसार हों या विरुद्ध, चाहे वे ऐसी वस्तुएँ हों जिन को तुम पाने का प्रयत्न करते हो अथवा ऐसी हों जिनसे तुम

दूर भागते हो।

ये सब वस्तुएँ तुम्हारे अन्दर प्रकाश और छाया के रूप में आलिंगन-बद्ध युगल की तरह गतिशील रहती हैं।

और जब छाया अदृश्य हो जाती है तब प्रकाश, जो पीछे रह जाता है, किसी दूसरे प्रकाश की छाया बन जाता है।

और इसी प्रकार जब तुम्हारी स्वतन्त्रता बन्धनों की बेड़ियों को तोड़ देती है तब वही स्वतन्त्रता किसी अन्य महान् स्वतन्त्रता की बेड़ी बन जाती है।

विवेक और भावना—

पुजारिन ने फिर दूसरी बार कहा—अब मुझे विवेक और भावना की बाबत समझाईये।

वह बोले—

तुम्हारा मन प्रायः युद्ध-क्षेत्र बना रहता है, जहाँ तुम्हारे तर्क और निर्णय शक्ति का भावना और तृष्णा से हर पल युद्ध होता रहता है।

काश कि मैं तुम्हारे मन का पंच होता और तुम्हारे मन के विरोधी तत्वों को एकात्म और सहचर बना देता।

पर जब तक तुम स्वयं संधि की भावना से प्रेरित नहीं होते''बल्कि अपने सभी तत्वों से आलिंगन नहीं करते तब तक मैं कुछ नहीं कर सकता।

× × ×

तुम्हारी भावना और तर्क तुम्हारे समुद्रगामी जीवन-पोत के पाल और पतवार हैं।

अगर उनमें से कोई भी टूट जाये तो वह पोत (जहाज़) या तो लहरों पर बह जायेगा या मध्य सागर में गतिहीन होकर ठहर जायेगा। इस प्रकार तुम अपने लक्ष्य की प्राप्ति न कर पाओगे।

क्योंकि अकेला तर्क प्रतिबन्धक शक्ति है, और निर्वासित भावना एक ज्वाला है, जो अपने आप को जला डालती है।

अत: ऐसा मार्ग ग्रहण करो कि तुम्हारी आत्मा बुद्धि को भावना के शिखर तक पहुँचा दे जहाँ कि वह अपने उल्लास को गीतों में भरने लगे।

और वहीं आत्मा तुम्हारी भावनाओं में बुद्धि का पुट देवे; ताकि तुम्हारी भावनायें दिन-प्रति-दिन तप की भट्टी में गलना सीख जायें और फ़ीनिक्स की तरह, जिसके लिये अग्नि ही जीवन है, अनुदिन अपनी राख में से नया जीवन लेकर उठें।

× × ×

तुम निर्णय शक्ति और तृष्णा को अपने घर के दो अतिथियों की तरह जगह दो।

निश्चय ही कभी भी तुम एक अतिथि के साथ दूसरे की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ बर्ताव नहीं करोगे; एक के प्रति अवज्ञा तुम्हारे प्रति दोनों का प्रेम और विश्वास छीन लेगी।

जब तुम पर्वतों पर श्वेत चिनार के वृक्षों की घनी छाँह

में, दूर के शान्त खेतों और चरागाहों के सौम्य-सौन्दर्य को निहारो, तब तुम्हारे हृदय को शांत होकर यह कहना चाहिये कि "ईश्वर बुद्धि में विश्राम करता है"।

और जब तूफान आयें और आँधी के प्रचंड झोंकों से जंगल काँप उठे, और बिजली की कड़क और चमक आकाश के गौरव को प्रकाशित कर दे, तब तुम्हारा हृदय भयभीत होकर पुकार उठे—"ईश्वर भावना में गति करता है"।

और क्योंकि तुम भी विश्व-जीवन का एक साँस हो और उसके विशाल वन के एक पत्ते के समान हो, तुम्हें भी बुद्धि में विश्राम लेना और भावना में गतिमान होना चाहिये।

दुःख—

और एक महिला ने कहा, हमें दुःख के विषय में कुछ समझाइये।

उन्होंने कहा—

तुम्हारा दुःख उस आवरण के फट जाने से उत्पन्न होता है जो कि तुम्हारे ज्ञान को आवृत्त किये हुए है।

जिस प्रकार एक फल की गुठली टूटने की पीड़ा को सह कर ही अपने गूदे को सूर्य के प्रकाश में लाती है, उसी प्रकार तुम्हें भी दुःख को समझना चाहिए।

और यदि तुम अपने जीवन में प्रति-दिवस घटने वाली आश्चर्यमयी घटनाओं को देखने का साहस रखते हो, तब तुम्हें यह दुःख किसी प्रकार भी सुख से कम आश्चर्यजनक प्रतीत न होगा।

और तुम अपने हृदय पर परिवर्तित होती हुई ऋतुओं को उसी प्रकार प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करोगे, जिस प्रकार

तुम अपने खेतों में ऋतुओं के परिवर्तन को सहर्ष स्वीकार करते हो।

और तब तुम अपने शोक रूपी शिशिर ऋतु में भी शांत और गम्भीर रह सकोगे।

दुःख का बड़ा भाग तो तुम स्वयं अपने आप अंगीकार करते हो।

वास्तव में वह एक कड़वी औषधि के समान है जिसके द्वारा तुम्हारे भीतर का वैद्य तुम्हारी रुग्न आत्मा का इलाज करता है।

इस लिए वैद्य पर विश्वास रखो और उस की औषधि का चुपचाप शांति से पान करो।

देखने में वैद्य का हाथ, कितना ही भारी और कठोर क्यों न हो, परंतु वह एक कोमल और अदृश्य शक्ति के हाथ द्वारा आलोकित पथ पर ही चलता है।

और वह प्याला—जिस से वैद्य तुम्हें औषधि पान कराता है, चाहे तुम्हारे होंठ ही जला दे—उस मिट्टी का बना हुआ है जिसको उसके बनाने वाले ने अपने पवित्र अश्रु-कणों से गूँधा है।

आत्म-ज्ञान—

और एक मनुष्य ने पूछा—आत्म-ज्ञान के सम्बन्ध में कुछ कहिये।

उन्होंने उत्तर दिया—

तुम्हारा अन्तर्वासी दिन और रात के परदे में छिपे गूढ़ रहस्य को जानता है और चुप है।

लेकिन तुम्हारे कान तुम्हारी मूक आत्मा के शब्द सुनने के लिये व्याकुल हैं।

तुम उस रहस्य को शब्दों में सुनना चाहते हो, जो कल्पनाओं के स्वरूप में तुम्हारे हृदय में विद्यमान है।

तुम अपने सपनों की नग्न काया का अँगुलियों से स्पर्श करना चाहते हो।

और तुम्हें करना भी ऐसा ही चाहिये।

तुम्हारी आत्मा में छिपा हुआ जो रहस्यपूर्ण झरना है उसका फूट कर कल-कल करते हुए समुद्र की ओर दौड़ना अनिवार्य है।

उस समय तुम्हारी असीम गहराई में छिपा खजाना तुम्हारी आँखों के सामने प्रगट हो जायेगा।

परन्तु अपने अज्ञात खज़ाने को तुला पर न तोलना;

और न ही अपने 'आत्म-ज्ञान' की गहराई को मान-यष्टि या डोरी से नापने की कोशिश करना।

क्योंकि आत्मा एक अथाह और असीम समुद्र है।

× × ×

यह न कहना कि "मैंने सत्य को पा लिया है" बल्कि यह कहना कि "मैंने 'एक' सत्य को पा लिया है।"

यह न कहना कि 'मैंने आत्मा की राह खोज ली है।' बल्कि यह कहना कि "मैंने आत्मा को अपनी राह पर चलते पा लिया"।

क्योंकि आत्मा हर एक रास्ते पर चलती है।

वह किसी बँधी रेखाओं पर नहीं चलती, न ही वह सरकंडे की भाँति बढ़ती है।

आत्मा तो अनन्त पंखड़ियों वाले कमल की तरह अपने रूप को प्रकट करती है।

अध्यापन—

तब एक अध्यापक ने कहा—गुरुदेव ! अध्यापन के विषय में उपदेश दीजिये।

उन्होंने उत्तर दिया—

तुम्हारे ज्ञान के उषाकाल में जो ज्ञान अर्धनिद्रित अवस्था में विद्यमान है, उसके अतिरिक्त कोई ज्ञान ऐसा नहीं जिसका कोई उपदेश कर सके।

देवस्थानों और शिक्षणालयों की छाया में बैठकर अपने शिष्यों को विद्या दान देने वाले ज्ञानी भी केवल अपनी श्रद्धा और अपने प्रेम का ही अंश अर्पण कर सकते हैं, अपने ज्ञान का नहीं।

यदि वे सचमुच ज्ञानी हैं तो वे तुम्हें अपने ज्ञान मंदिर में प्रवेश करने की अनुमति नहीं देंगे—बल्कि वे तुम्हारे ही अन्तर्वासी मन के द्वार तक तुम्हें ले जायेंगे।

ज्योतिषी तुम जैसे जिज्ञासुओं से केवल आकाश-स्थित

सूर्य-चन्द्र संबन्धी वार्त्तालाप कर सकता है, अपना गूढ ज्ञान नहीं दे सकता।

गायक विश्व की दसों दिशाओं में व्याप्त स्वर लहरी को तालबद्ध करके तुम्हारे सन्मुख गा सकता है—किंतु वह तुम्हें ताल ग्रहण करने के लिए कान और गाने के लिए वाणी देने की क्षमता नहीं रखता।

गणित शास्त्र में निष्णात विद्वान केवल तुमसे मान-परिमाण संबन्धी बात-चीत ही कर सकता है, गणित का गूढ़ज्ञान नहीं दे सकता।

क्योंकि एक मनुष्य की दृष्टि दूसरे मनुष्य के चक्षुओं में अपनी ज्योत नहीं भर सकती। परमपद की ओर उड़ता हुआ मनुष्य दूसरे मनुष्यों को अपने पंख उधार नहीं दे सकता।

और जिस प्रकार परमेश्वर की दृष्टि में सब मनुष्य अपने अपने स्थान पर स्वतन्त्र महत्त्व लेकर स्थित हैं, उसी तरह ब्रह्मज्ञान और विश्वज्ञान के लिये भी प्रत्येक मनुष्य अपना मार्ग चुनने में स्वतन्त्र है।

मैत्री—

और एक युवक ने पूछा—गुरुदेव ! मैत्री के संबन्ध में उपदेश दीजिये।

उन्होंने उत्तर दिया—

तुम्हारा मित्र तुम्हारे मनोरथों की तृप्ति का ही मूर्त्त-रूप है।

वह तुम्हारा खेत है, जिसमें तुम प्रेम से बीज बोते हो और कृतज्ञता भरे मन से फसल काटते हो।

वह तुम्हारा भोजन और तुम्हारा आवासस्थान है।

क्योंकि शरीर और मन की भूख मिटाने तुम उसी की शरण जाते हो।

× × ×

जब तुम्हारा मित्र तुम्हारे सामने अपना मन खोलता है तो ना तुम 'ना' कहने में संकोच करते हो, ना ही 'हाँ' कहने की अन्तःप्रेरणा को दबाते हो।

और जब वह चुप होता है तो भी तुम्हारा हृदय उसके हृदय की बात सुन लेता है;

क्योंकि मैत्री में सब विचार, आशायें और इच्छायें मौन में ही जन्म लेती हैं और दो हृदय इस मौन में ही उन को बाँट लेते हैं। उस आनन्द का ढिंढोरा नहीं पीटा जाता।

मित्र से विदा होते समय सन्ताप न करो;

क्योंकि जिन गुणों के कारण तुम उस से प्रेम करते हो, वे उस की अनुपस्थिति में और भी विशद हो जायेंगे, जैसे पर्वत पर चढ़ने वाले के लिये पर्वत का सौंदर्य समतल से अधिक स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

मैत्री का लक्ष्य केवल दो आत्माओं का मिलन होना चाहिए।

क्योंकि जो प्रेम अपने ही गूढ़ स्वरूप के प्रकाशन के अतिरिक्त कोई भी लक्ष्य रखता है वह प्रेम नहीं है, बल्कि एक जाल है, जिस में केवल निरर्थक वस्तुएँ ही फंसती हैं।

× × ×

अपने भाग का श्रेष्ठतम अंश अपने मित्र के अर्पण करो।

उसे तुम्हारे जीवन-प्रवाह के उतार का जितना ज्ञान हो उतना ही उसके चढ़ाव का भी होना चाहिए।

व्यर्थ काल-क्षेप करने के अर्थ ही तुम मित्र की तलाश

मत करो।

बल्कि काल कृतार्थ करने के लिये ही उसको ढूँढो।

कारण, तुम्हारे मनोरथों की पूर्ति करना उसका धर्म है—न कि तुम्हारी रिक्तता को भरना।

मैत्री की मधुरता में हास्य भर दो।

क्योंकि छोटी छोटी चीज़ों के ओस-कणों से ही हृदय का प्रभात उदित होता है और ताज़गी पाता है।

वार्तालाप—

तब एक विद्वान् ने वार्त्तालाप के बारे में पूछा।

उन्होंने उत्तर दिया—

जब तुम्हारा विचार-जगत् से तारतम्य टूट जाता है, तब तुम बोलते हो;

और जब तुम अपने दिल के एकान्त में नहीं रह पाते, तब तुम ओठों पर शब्द के रूप में आ रहते हो, और आवाज़ एक अनमने हृदय का विनोद और खिलवाड़ हो जाती है।

और प्रायः इस वार्तालाप में विचारों का अधमरण हो जाता है।

क्योंकि विचारों का पक्षी आकाश विहारी है। आवाज़ के पिंजड़े में वह अपने पंख खोल सकता है, पर उड़ नहीं सकता।

× × ×

तुम में ऐसे भी हैं, जो एकान्त के भय से बचने के लिये वाचाल को ढूँढ़ते हैं।

एकाँत की नीरवता उन की आँखों के समक्ष उन का नग्न स्वरूप प्रकट कर देती है, और वे उस से बचने का प्रयास करते हैं।

तुममें कुछ ऐसे भी हैं, जो बोलते हैं और अनजाने में ऐसा सत्य कह जाते हैं, जिसका उन्हें स्वयं ज्ञान नहीं होता।

कुछ ऐसे भी हैं, जो अपने अन्तर में सत्य को छिपाये रखते हैं, शब्दों में कुछ नहीं कहते।

इन्हीं के हृदयों में आत्मा मौन संगीत बन कर रहता है।

× × ×

जब तुम राह में या हाट में अपने मित्र से मिलो, तो तुम्हारी आत्मा तुम्हारे ओठों को हिलाये और वाणी को निर्देशित करे।

ताकि तुम्हारी आत्मा की आवाज़ उसकी आत्मा तक पहुंच जाए।

क्योंकि उसकी अन्तरात्मा ही तुम्हारे हृदय के सत्य को ग्रहण करेगी।

जैसे सुरा का रंग भूल जाने और सुरा-पात्र के टूट जाने पर भी उस के स्वाद की स्मृति बनी रहती है।

काल—

और एक ज्योतिषी ने 'काल' के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रकट की।

उन्हों ने उत्तर दिया—

तुम असीम-अपरिमेय 'काल' को तोलना और नापना चाहते हो।

तुम अपने काम-काज को ही समय और ऋतुओं के विभाग के अनुसार व्यवस्थित नहीं करते, बल्कि अपनी आत्मा की दिशा भी उसी को देखकर निश्चित करने का प्रयत्न करते हो।

काल को नदी समझ कर और उसके तट पर बैठ कर तुम उसके प्रवाह का आनन्द लेना चाहते हो।

× × ×

मैं जानता हूँ, तुम्हारे भीतर काल के बन्धनों से मुक्त जीव को इस सत्य का ज्ञान है कि जीवन काल के बंधनों

से मुक्त है।

और वह जानता है कि विगत काल आज की स्मृति-मात्र है, और आगामी कल आज का स्वप्न।

और वह यह भी जानता है कि जो चेतन तुम्हारे अंदर संगीत और विचारों में मग्न है; वह अब भी उस आदि क्षण की परिधि में बस रहा है—जिसने आकाश के तारों को ब्रह्माण्ड के शून्य में बखेरा था।

तुम में से कौन है जो यह नहीं जानता कि उसको प्रेम करने की शक्ति असीम है।

और वह कौन है जिसे इस बात का ज्ञान नहीं कि प्रेम असीम होते हुए भी उसी के व्यक्तित्व में केन्द्रीभूत है····वह प्रेम जो एक विचार से दूसरे विचार में, और एक कार्य से दूसरे कार्य में गतिमान नहीं होता।

क्या प्रेम की तरह काल भी अविभाज्य और असीम नहीं?

× × ×

किन्तु यदि तुम्हारी कल्पना काल को ऋतुओं में बाँटना ही चाहती है, तो इस रीति से बाँटो कि प्रत्येक ऋतु अन्य ऋतुओं को अपनी परिधि के आलिंगन में ले ले।

और आज का वर्त्तमान, भूतकाल को स्मृतियों, और भविष्य को अभिलाषाओं से आलिंगन में इस तरह बाँध ले कि सब एकरूप हो जायें।

श्रेय और अश्रेय—

नगर के एक पुरखा ने श्रेय और अश्रेय के सम्बन्ध में प्रश्न किया।

उन्होंने उत्तर दिया—

मैं केवल तुम्हारे भीतर के श्रेय के सम्बन्ध में कह सकता हूँ—अश्रेय के सम्बन्ध में नहीं।

कारण, अश्रेय और कुछ नहीं—केवल अपनी तृष्णा और वासना से सताये हुए श्रेय का ही विकृत रूप है।

सत्य तो यह है कि जब श्रेय की क्षुधा जाग उठती है, तो वह अँधेरी गुफाओं में उसकी पूर्त्ति के अर्थ जाता है, और जब वह प्यासा होता है, तो वह गंदला जल पीने से भी नहीं झिझकता।

× × ×

तुम तभी तक श्रेष्ठ रह सकते हो, जब तक तुम अपने स्वरूप में रहते हो।

किन्तु जब तुम अपने स्वरूप में नहीं रहते, तब भी तुम

निकृष्ट नहीं हो जाते।

कारण, केवल विभक्त होने से ही कोई घर चोरों की कन्दरा नहीं बन जाता।

पतवार-रहित पोत भयंकर टापुओं में निरुद्देश्य भले ही घूमे, पर वह डूबता नहीं।

तुम श्रेष्ठ होते हो, जब तुम अपने में से दूसरे को देते हो।

किन्तु अपने लाभ का लोभ भी तुम्हें अश्रेष्ठ नहीं बना देता।

जब तुम स्वहित के अर्थ ही प्रयत्न करते हो, तो तुम्हारी मनोवस्था उस वृक्ष की जड़ के समान होती है जो पृथ्वी का स्तन्य पान करती है और स्व-लोभवश उसकी गोद को जकड़ कर रखती है।

और सच तो यह है कि फल कभी जड़ों से नहीं कह सकता—कि तुम भी मेरे ही समान बन कर पको और भरपूर होकर प्रदान करो।

क्योंकि फल का हित इसी में है कि वह दान करे और जड़ का हित इसी में है कि वह ग्रहण करे।

× × ×

तुम श्रेष्ठ होते हो, जब तुम पूर्ण जागरण में बोलते हो।

लेकिन जब सोते हुए तुम्हारी वाणी प्रलाप करती है, तब भी तुम अधम नहीं बन जाते।

कई बार वह प्रलाप ही वाणी का पोषक बन जाता है।

× × ×

तुम श्रेष्ठ होते हो, जब तुम अपने ध्येय की ओर दृढ़ निश्चय और साहस के साथ बढ़ते हो।

लेकिन यदि तुम लँगड़ाते हुए बढ़ते हो, तो भी तुम नीच नहीं बन जाते।

लँगड़ा कर चलने वाले भी आगे ही बढ़ते जाते हैं, पीछे तो नहीं मुड़ आते।

परंतु तुम, जो श्रेष्ठ और शीघ्रगामी हो, इस बात का ध्यान रखो कि तुम लंगड़ों के सामने लंगड़ाने न लग जाओ, यह विचार कर के कि ऐसा करने से तुम उन के प्रति दया और सहानुभूति प्रकट कर सकोगे।

× × ×

तुम असंख्य प्रकार से श्रेष्ठ हो—और जब तुम श्रेष्ठ नहीं होते, तो अधम नहीं हो जाते।

तब तुम केवल प्रमाद और उदासीनता के वश ही होते हो।

शोक है, कि हिरण कछुए को शीघ्रगामी बनने की शिक्षा नहीं दे सकता।

× × ×

अपने महान् 'स्व' को पाने की तुम्हारी अनवरत अभि-

लाषा में ही तुम्हारी श्रेष्ठता निहित है। और यह अभिलाषा तुम सब में एक समान है।

किन्तु तुम में कुछ ऐसे हैं, जिन में इस आत्म-शोध की कामना उस जल-धारा के समान है, जो हिमावृत गिरि-शिखरों के रहस्य और विस्तृत अरण्यों के संगीतों को झोली में छिपाये सदा समुद्र की ओर दौड़ा करती है।

और कुछ ऐसे हैं, जिनमें यह कामना उस मैदानी नदी का रूप ले लेती है, जो समुद्र तक पहुँचने से पूर्व ही अनेक धाराओं में बँट कर मन्द होते-होते धरती में ही खो जाती है।

लेकिन ऐ पहुँचे हुए साधको! तुम अपने इन मन्दगामी आत्म-शोधकों से यह न कहना कि तुम इतने मन्द और शिथिल किस लिये हो?

क्योंकि जो सचमुच श्रेष्ठ होते हैं, वे कभी नग्न व्यक्ति से यह नहीं पूछते कि तुम्हारे वस्त्र कहाँ हैं? न ही वे किसी बदनसीब बे-घर से पूछते हैं कि तुम्हारे घर का क्या हुआ?

प्रार्थना—

एक पुजारी ने 'प्रार्थना' के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रगट की।

उन्होंने उत्तर दिया—

तुम कष्ट या आवश्यकता पड़ने पर ही प्रार्थना करते हो; अच्छा हो—अगर तुम पूर्ण सुख और वैभव में भी उसी तन्मयता से प्रार्थना करो।

क्योंकि प्रार्थना का अर्थ ही अपनी आत्मा को विश्व जीवन में मिलाना है।

और, यदि तुम्हें अपने अन्धकार को बाहिर बखेर कर ही परितोष होता है, तो विश्वास रखो! अपने उजालेपन को बाहिर फैलाने में भी तुम्हारा तीव्र उल्लास निहित है।

और अगर प्रार्थना के लिये आत्मा की पुकार आने पर तुम्हें रोदन ही सूझता है—तो भले ही तुम रोओ, तुम्हारी आत्मा को तुम्हें बार-बार तब तक प्रार्थना के लिये

उकसाते रहना चाहिये जब तक कि तुम हँसते हुए वापिस न आओ।

जब तुम प्रार्थना करते हो, तो तुम्हारी आत्मा उन साधकों की आत्माओं से वायुमण्डल में भेंट करती है, जो कि उसी समय प्रार्थना कर रहे होते हैं, और जिन्हें तुम प्रार्थना के समय ही मिल सकते हो।

इसलिए यदि तुम देवता के उस अदृश्य मन्दिर में जाओ, तो केवल मिलन की मधुर उत्कण्ठा लेकर ही जाओ।

क्योंकि यदि केवल प्रार्थी बन कर ही देवालय में जाओगे, तो तुम्हें कुछ लाभ न होगा।

यदि तुम मन्दिर में केवल अपने को निष्कृष्टतम बताने जाओगे, तो प्रभु तुम्हारा उत्कर्ष नहीं करेगा।

और यदि तुम वहाँ दूसरों की भलाई की भीख माँगने जाते हो, तो भी तुम्हारी प्रार्थना सुनी नहीं जाएगी।

अतः तुम्हारे लिए तो इतना ही पर्याप्त कि तुम उस अदृश्य मन्दिर में प्रवेश करो।

× × ×

मैं तुम्हें प्रार्थना के शब्दों को नहीं सिखा सकता।

प्रभु तुम्हारे शब्दों को नहीं सुनते—वे तुम्हारे शब्दों को केवल उसी समय सुनते हैं जब वे स्वयं भीतर बैठ कर तुम्हारे होठों से उन शब्दों को बुलवाते हैं।

और न ही मैं तुम्हें सागरों, वनों और पर्वतों की प्रार्थना का गीत सिखा सकता हूँ।

लेकिन तुमने तो वहीं जन्म लिया है,

तुम स्वयं उस गीत को अपने हृदय की धड़कन में सुन सकते हो।

यदि तुम रात के गाढ़ मौन में कुछ सुनने की कोशिश करोगे, तो उन्हें यही प्रार्थना करते पाओगे--

"हे प्रभो! हमारा अस्तित्व तुम्हारे अस्तित्व पर ही निर्भर है; तुम्हारी ही तो यह अभिलाषा है, जो हमारे मन में जाग रही है।

"तुम्हारी ही तो यह कामना है, जिसकी हम कल्पना करते हैं।

"हमारे अभ्यंतर यह तुम्हारी ही तो प्रेरणा है, जो हमारी रात को दिन बनाती है; तिमिर को प्रकाश देती है। तिमिर-प्रकाश दोनों ही तुम्हारे ही हैं।

"हे अन्तर्वासी! हम तुम से क्या मांगें? मन में आने से भी पहिले तुम तो हमारे मनोरथ को जानते हो।

"हमारे मनोरथ तुम्हीं हो—हम तुम से तुम्हीं को माँगते हैं। जब आप हमें अपना कुछ अंश प्रदान करते हो, तो मानो हमें सब कुछ दे देते हो।"

आनन्द—

तब एक अरण्यवासी साधु ने, जो वर्ष में एक बार नगर में आता था, आनन्द के संबन्ध में जिज्ञासा प्रगट की।

गुरुदेव ने उत्तर दिया—

आनन्द एक स्वातन्त्र्य-गीत है,
तथापि आनन्द स्वतन्त्रता का ही दूसरा नाम नहीं।
वह तुम्हारी कामनाओं का पुष्प है,
तथापि वह उसका फल नहीं।
यह है पृथ्वी की गहराई जो तुम्हें बुलाती है, आकाश की उच्चता पाने के लिये,
तथापि यह ना उच्चता है ना गहराई।
यह एक पंजर-बद्ध पक्षी के पंखों की फड़फड़ाहट है,
तथापि यह सीमा-बद्ध आकाश नहीं।
सचमुच आनन्द एक स्वातन्त्र्य-गीत है।
मेरी कामना है कि तुम इसे पूर्ण तन्मय होकर गाओ;

तथापि मैं तुम्हें इस गायन में अपने आप को खो देने का आदेश नहीं दूँगा।

× × ×

तुम में से कुछ युवक आनन्द की शोध में सब कुछ भूल जाते हैं, तब उनकी आलोचना और निंदा होती है।

परंतु मैं उनकी आलोचना अथवा निंदा नहीं करूँगा, बल्कि उनके सफल मनोरथ होने की प्रार्थना करूँगा।

ऐसे शोधकों को ही सुख की प्राप्ति होगी, किंतु केवल आनन्द की ही नहीं;

आनन्द की सात बहिनें हैं, और जो सब से कम सुन्दर है वह भी आनन्द से अधिक रमणीय है।

वे सब उसे प्राप्त हो जाती हैं, जैसे कन्द-मूल के लिये ज़मीन खोदने वाले को कदाचित धन का खजाना मिल जाता।

× × ×

तुम में से कुछ पुरखा अतीत के आनन्द के उपभोगों को यौवन की मदहोशी में किये गये पाप समझ कर खेद मनाते हैं।

यह खेद मन-रूपी-आकाश पर मेघ बन कर छा जाता है, प्रायश्चित्त नहीं बनता।

उन्हें अपने आनन्द के उपभोगों का स्मरण कृतज्ञता भरे

दिल से करना चाहिए, मानो वह उनकी बसन्त की उपज हो।

तथापि, यदि इस खेद में ही उनके मन को समाधान मिलता है तो वे खेद करने में स्वतन्त्र हैं।

× × ×

तुम में से कुछ ऐसे हैं जो इतने युवक नहीं कि आनंद का शोध कर सकें, और इतने वृद्ध भी नहीं कि अतीत के आनन्द का स्मरण करें;

वे इस शोध और स्मरण के भय से त्राण पाने के लिये ही आनन्द का त्याग कर देते हैं, ताकि कहीं उन से आत्मा के प्रति उपेक्षा अथवा अपराध न हो जाय।

परंतु उनके इस त्याग में भी आनंद की एक झाँकी है।

वे इस प्रकार काँपते हाथों से कन्द-मूल खोदते हुए भी स्वर्णकोष प्राप्त कर लेते हैं।

और, आत्मा के प्रति अपराध कैसा?

रात्रि की नीरवता का भंग करके कोयल कौनसा अपराध करती है? और खद्योत रात्रि के अन्धकार में चमक कर तारागण का क्या बिगाड़ता है?

और यह तो कहो, क्या तुम्हारी अग्नि की ज्वाला या उसके धुएं से वायु पर बोझ पड़ जाता है?

क्या तुम यह समझते हो कि तुम्हारी आत्मा एक शाँत

सरोवर के समान है जिसे तुम अपने हाथ की छड़ी से अशान्त कर सकते हो ?

× × ×

प्रायः सुखों का त्याग करते हुए तुम अपनी इच्छाओं को हृदय की गहराई में भर लेते हो।

कौन जाने, आज तुमने जिसका त्याग किया है, वह कल उभरने की प्रतीक्षा कर रहा हो।

तुम्हारे शरीर को अपनी क्षमताओं और न्यायानुकूल आवश्यकताओं का ज्ञान है, उसको ठगा नहीं जा सकता।

और तुम्हारा शरीर तुम्हारी आत्मा की वीणा है।

उसमें मधुर संगीत या बेसुरा कोलाहल भरना तुम्हारे हाथ है।

× × ×

तुम सोचते हो 'सुख की शोध में श्रेय-अश्रेय का भेद कैसे करोगे ?

मैं उसका उपाय बतलाता हूं।

अपने खेतों और उपवनों में जाओ, तब तुम्हें पता लगेगा कि फूलों से मधु एकत्र करने में ही मधुमक्खी को आनंद मिलता है,

परंतु फूलों को आनंद भी इसी बात से मिलता है कि वे अपना मधु मधुमक्खी को अर्पण कर दें।

क्योंकि फूल मधुमक्खी का जीवन-स्रोत है, और फूल के लिये मधुमक्खी प्रेम की सन्देश-वाहिका,

और फूल और मक्खी दोनों के लिये सुख का भोग और सुख का दान जीवन के धर्म और आनन्द के स्रोत हैं।

× × ×

ऐ आर्फलीज़ निवासियो ! तुम भी आनन्द के शोध में पुष्प और मधुमक्खी का अनुकरण करो।

सुन्दरता—

तब एक कवि ने सुन्दरता के सम्बन्ध में पूछा।

गुरुदेव ने उत्तर दिया—

सुन्दरता को कहाँ ढूँढोगे और उसे कैसे पाओगे जब तक कि वह स्वयं तुम्हारा पथ और पथ-प्रदर्शक न बन जाये।

और तुम उसका वर्णन कैसे कर सकते हो, जब तक कि वह स्वयं तुम्हारी वाणी के तारों को न बजाये।

× × ×

आर्त्त व घायल व्यक्ति कहते हैं—सुन्दरता कृपालु और मृदुल है?

वह अपनी ही शोभा से अर्धलज्जिता तरुण माता के समान, जो बच्चे को उठाये हुए हो, हमारे बीच से गुज़रती है।

विलासी लोग कहते हैं—नहीं ऐसी बात नहीं, सुन्दरता तो प्रबल शक्तिशाली और भय-प्रद वस्तु है।

वह प्रचण्ड झंझावात के समान है जिससे हमारे पाअ के नीचे की पृथ्वी और सिर के ऊपर का आकाश काँप

उठता है।

× × ×

थके हारे लोग कहते हैं—सुन्दरता एक मन्द मन्द आलाप है जो आत्मा में ध्वनित होता है।

उसकी ध्वनि अन्धकार के डर से कांपती हुई दीपाशिखा के समान हमारे मौन अन्तः करण के वश में रहती है।

परंतु व्यग्र व्यक्ति कहते हैं—हमने उसे पर्वत की चोटियों पर कोलाहल करते सुना है।

और उसके कोलाहल के साथ घोड़ों की टापों, पंखों की फड़फड़ाहट और शेरों की गर्जना भी सुनाई दी है।

× × ×

रात्रि के समय नगर के पहरेदार कहते हैं—सुन्दरता का उदय प्रभात में उषा काल के संग पूर्व दिशा से होता है।

मध्याह्न के समय श्रमजीवी और बटोही कहते हैं—सुन्दरता को हमने सन्ध्या के गवाक्षों में से पृथ्वी पर झाँकते हुए देखा है।

× × ×

शिशिर-पीड़ित कहते हैं—सुन्दरता वसन्त की किरणों के साथ पर्वतों के शिखरों पर उछलती कूदती हुई आयगी।

गर्मियों की कड़कती धूप में खेती काटने वाले कहते हैं—

हमने उसे पतझर के पत्तों के संग नाचते देखा है—उसके सुनहरे केशों पर हिम कण पड़े हुए थे।

ये सब बातें सुन्दरता के वर्णन में तुम ने कहीं हैं।

सच तो यह है कि तुम सुन्दरता के विषय में न कहकर केवल अपनी अतृप्त आकांक्षाओं का ही वर्णन करते हो।

सुन्दरता आकांक्षा नहीं—बल्कि परमानन्द है।

यह तृषित होंट या भिक्षा के लिये फैला हुआ हाथ नहीं है,

बल्कि एक प्रदीप्त हृदय और मुग्ध आत्मा है।

सुन्दरता किसी मंदिर की मूर्त्ति नहीं जिसके तुम दर्शन कर सको, या सुन्दरता वह संगीत नहीं जिसे तुम्हारे कान सुन सकें।

सुन्दरता तो वह मूर्त्ति है, जो तुम आंख बन्द करके भी देख सकते हो; यह वह संगीत है जो तुम कान बन्द करके भी सुन सकते हो!

सुन्दरता.....छाल के भीतर का रस नहीं है और न ही यह पंजे के साथ लगा हुआ एक पर,

अपितु वह तो एक सदाबहार उद्यान है अथवा सदा ही उड़ते हुए फ़रिश्तों का झुण्ड।

× × ×

ऐ आर्फलीज़ निवासियो ! सुन्दरता एक जीवन है—जब जीवन अपने पवित्र मुख का आवरण दूर कर देता है।

परंतु तुम ही जीवन हो—तुम ही उसके आवरण।

सुन्दरता दर्पण में अपने ही रूप को निहारती हुई नित्यता है।

परंतु तुम ही नित्यता हो और तुम ही दर्पण।

धर्म—

और एक वृद्ध उपदेशक ने धर्म के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रगट की।

गुरुदेव ने उत्तर दिया—

जो कुछ मैंने आज कहा है क्या वह धर्म के अतिरिक्त कुछ और था ? क्या सब प्रकार के कर्म और चिन्तन धर्म के अंग नहीं हैं।

और जो न कर्म है और न चिन्तन, परंतु एक चमत्कार और आश्चर्य है, जो उस समय भी तुम्हारे हृदय में उद्भूत होता रहता है, जब कि तुम्हारे हाथ मूर्त्ति घड़ने या सूत कातने में व्यस्त होते हैं, वह भी क्या धर्म नहीं है ?

वह कौन सा व्यक्ति है जो अपने कर्मों से अपनी निष्ठा को और अपने व्यवसायों से अपनी श्रद्धा को दूर कर सकता है ?

कौन है जो काल को अपने सामने बखेर कर यह कह

सके कि यह प्रभु के लिए है और यह मेरे लिए; यह मेरी आत्मा के लिए है और यह मेरे शरीर के लिए ?

तुम्हारे काल की सारी घड़ियां हंस के पंखों के समान हैं—जो आकाश में आत्मा से आत्मा के प्रति संचार कर रही हैं।

वह जो सदाचार को आत्मा का श्रेष्ठ आवरण समझ कर धारण करता है वह नग्न ही श्रेष्ठ है।

वायु और सूर्य उसकी त्वचा में छिद्र नहीं बना सकते।

जो अपने व्यवहार को शास्त्र की मर्यादा में बांधता है वह मानो मैना को पिंजरे में बंद करता है।

स्वतन्त्र गायन लोहे की सींखचों और तारों के अन्दर से पैदा नहीं हो सकता।

और वह व्यक्ति जो पूजा को एक खिड़की के समान समझता है कि जब चाहा उसे खोल लिया और जब इच्छा हुई बन्द कर दिया ..... उसने अपनी आत्मा के मन्दिर के दर्शन नहीं किये, जिस के द्वार एक उषा से दूसरी उषा तक खुले रहते हैं।

× × ×

तुम्हारा दैनिक जीवन ही तुम्हारा मन्दिर है और वही तुम्हारा धर्म।

जब भी तुम उसमें प्रवेश करो, अपने साथ अपना सब कुछ लेते जाओ।

अपना हल, अपनी भट्टी, अपनी हथौड़ी, अपनी वीणा,

और उपयुक्तता और आनन्द के हेतु निर्मित सब साधन भी अपने साथ लेते जाओ।

क्योंकि भावना में तुम अपनी सफलताओं से ऊँचा नहीं चढ़ सकते और अपनी असफलताओं से नीचे नहीं गिर सकते।

और अपने साथ मनुष्य मात्र को भी लेते जाओ;

क्योंकि पूजा करते हुए तुम उनकी आशाओं से ऊँचा नहीं उठ सकते और न ही उनकी निराशा की अपेक्षा नीचे गिर सकते हो।

× × ×

यदि तुम्हें प्रभु के जानने की इच्छा है तो पहेलियां मत बूझो।

अपने निकट ही देखोगे तो तुम उसे अपने बच्चों के संग खेलते पाओगे।

आकाश में देखोगे तो उसे बादलों में चलता हुआ, बिजली के रूप में अपने फैले हुए पंखों के साथ चमकता हुआ, और बूंदों में पृथ्वी पर उतरता देखोगे।

तुम उसे फूलों में हंसते और वृक्षों की शाखाओं द्वारा संकेत करते अनुभव करोगे।

मृत्यु—

तब अलमित्रा ने कहा—अब हम मृत्यु के सम्बन्ध में भी कुछ सुनेंगे।

और उन्होंने कहा—

तुम मृत्यु के रहस्य का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो।

किन्तु, जब तक उसकी शोध जीवन के केन्द्र में न करोगे तब तक वह रहस्य नहीं खुलेगा।

रात के अन्धकार से ढँपी और दिन के प्रकाश के लिये अन्धी, उल्लू की आंखें प्रकाश के रहस्य को कैसे जान सकती हैं?

यदि तुम मृत्यु का स्वरूप देखना चाहते हो तो तुम्हें पहले जीवन का रहस्य समझना होगा।

क्योंकि सरिता और समुद्र के समान जीवन और मृत्यु भी एक ही हैं।

× × ×

तुम्हारी आशाओं और अभिलाषाओं के पर्दों में तुम्हारा परलोक-ज्ञान चुपचाप सोया पड़ा है।

और विकास का स्वप्न लेते हुए, हिम से ढके बीज के समान, तुम्हारा हृदय भी बसन्त के स्वप्न ले रहा है।

अपने स्वप्नों पर श्रद्धा रखो—क्योंकि उन्हीं में शाश्वत का द्वार छिपा है।

तुम्हारा मृत्यु-भय उस चरवाहे के भय के समान है जो राज-सन्मान पाने के लिये दरबार में उपस्थित किया गया है और जो हर्ष से प्रफुल्लित होने के स्थान पर राजभय से थरथर कांप रहा है।

क्या गडरिया कांपते हुए शरीर के भीतर प्रसन्न नहीं, क्योंकि उसे राजकीय मान प्राप्त होना है।

तिस पर भी क्या वह काँपने में अधिक तत्पर नहीं?

× × ×

आखिर मृत्यु वायु में नग्न खड़े होने और सूर्य किरणों में लीन हो जाने के अतिरिक्त है ही क्या?

श्वास का रुक जाना भी क्या है? श्वास को अविश्रान्त स्पन्दन से मुक्त करना ही तो है, ताकि वह उपाधि रहित होकर विशाल बने और प्रभु की शोध में अबाध यत्न कर सके।

× × ×

जब तुम मौन की सरिता से पान करोगे, तभी आत्मा का संगीत गा सकोगे।

पर्वत के शिखर पर पहुंच कर ही तुम ऊपर चढ़ना आरंभ करोगे।

और जब पृथ्वी तुम्हारे शरीर की आहुति ले लेगी तभी तुम स्वतन्त्र नृत्य कर सकोगे।

निर्वाण—

अब सन्ध्या का समय हो गया था।

ब्रह्मवादिनी अलमित्रा ने कहा—आज का दिन, यह प्रदेश और अमृत वाणी कहने वाली तुम्हारी आत्मा धन्य है।

उन्होंने उत्तर दिया, क्या मैंने प्रवचन किया है?

क्या मैं भी श्रोता नहीं था?

× × ×

तदनन्तर वह मन्दिर के सोपान से उतरे और सब लोगों ने उनका अनुकरण किया। अपने जहाज़ पर पहुंच कर वह डेक पर खड़े हो गये।

जनता की ओर मुख करके गम्भीर घोष के साथ उन्होंने कहना शुरू किया:—

ऐ आर्फलीज़ निवासियो! पवन मुझे तुमसे विदा होने की आज्ञा दे रहा है।

मैं पवन की तरह शीघ्रता करने वाला नहीं, तथापि मुझे जाना है।

हम पथिक, एकान्त मार्ग के यात्री हैं। हमारे दिनों की कोई शृंखला नहीं। जहां आज का अन्त हुआ वहां से कल का प्रारम्भ नहीं होगा। सूर्य उदय होते समय हमें उस स्थान पर नहीं पाएगा जहाँ उसने अस्त होते समय हमें छोड़ा था।

जब पृथ्वी निद्रामग्न होती है तब भी हम यात्रा जारी रखते हैं।

बट वृक्ष के बीज के समान हमारा जीवन है। जब हमारा हृदय पूर्ण और परिपक्व हो जाता है तो हम वायु के हवाले कर दिये जाते हैं जो हमें पृथ्वी पर बखेर देती है।

× × ×

मैं बहुत अल्प काल तुम्हारे संग रहा और वे शब्द उससे भी थो थे जो मैंने तुमसे कहे।

यदि कदाचित् मेरे शब्दों की गूंज तुम्हारे कानों में क्षीण होकर मिट जाए और मेरा प्रेम तुम्हारी स्मृति से उतर जाए तो मैं फिर आऊँगा।

और तब अधिक समृद्ध हृदय और वशकारी वाणी में तुम से बोलूंगा।

सचमुच, सागर की लहरों के संग मैं फिर आऊँगा।

और भले ही मृत्यु मुझे छिपा ले और महान मौन मुझे अपने अंचल में ढांक ले, तथापि मैं तुम्हारी बुद्धि में

शोध बनकर आऊँगा।

मेरा शोध व्यर्थ नहीं जायगा।

मेरे सन्देश में यदि कुछ भी सत्य है तो वह अधिक स्पष्ट ध्वनि में सुनाई देगा और तुम्हारे विचारों के अनुरूप स्वतः प्रगट होगा।

× × ×

ऐ आर्फ़लीज निवासियो! मैं वायु वेग से जा रहा हूं—तथापि शून्य के खोल में नहीं जा रहा।

यदि आज का दिन तुम्हारी आवश्यकताओं और मेरे प्रेम की पूर्णता से कृतार्थ नहीं हो सका तो भी इस वचन को किसी आगामी कल पर छोड़ दो।

मनुष्य की अभिलाषायें बदल सकती हैं; प्रेम नहीं बदलता और न ही अपने प्रेम से मन के मनोरथपूर्ण करने की अभिलाषा ही बदलती है।

इसलिये विश्वास रखो, मैं शाश्वत मूकता से अवश्य लौटूंगा।

वह धुंध जो प्रभात समय खेतों में ओस बिन्दु छोड़ कर विदा हो जाती है वही ऊपर उठकर आकाश में मेघों का रूप धारण करेगी और वर्षा के रूप में बरसेगी।

मैं भी उसी धुन्ध के समान हूं।

कितनी ही सूनी रातों में मैं तुम्हारे गली कूचों में घूमा

हूं, मेरी आत्मा तुम्हारे घरों में प्रवेश करती रही है,

तुम्हारे हृदय-कम्पनों ने मेरे हृदय को हिलाया है और तुम्हारे उच्छ्वास मेरी सांसों में मिले हैं। तुम सब को मैं खूब जानता हूं।

तुम्हारे सुख और तुम्हारे दुख मुझे ज्ञात हैं और तुम्हारी निद्रा में तुम्हारे स्वप्न मेरे स्वप्न बनते रहे हैं।

प्रायः पर्वतों के बीच में सरोवर के समान मैं तुम्हारे मध्य रहा हूं।

तुम्हारे जीवन शिखर की चोटियां और उतार की घाटियां मेरे हृदय पर प्रतिविम्बित होती रही हैं। तुम्हारे ऊपर से गुज़रने वाले विचार-वासनाओं के अभ्र का भी मैं प्रतिबिम्ब धारण करता रहा हूं।

मेरी प्रशान्तता में तुम्हारे बालगोपाल का कलरव निर्झर बनकर हास्य करता रहा है, और सरिता रूप में तुम्हारे युवाहृदयों की आकांक्षायें मचलती रही हैं।

मेरे हृदय की निचली सतह पर जाकर भी उन झरनों और नदी प्रवाहों का गायन बन्द नहीं हुआ।

बल्कि उस हास्य और उन आकांक्षाओं से भी अधिक मधुर और महान वस्तु मेरे भीतर प्रविष्ट हुई है।

वह वस्तु थी तुम्हारा असीम अस्तित्व।

उस विराट् पुरुष के भीतर तुम केवल स्नायु और पेशियां हो।

उसके गान की तुलना में तुम्हारे सब संगीत हृदय के निःशब्द कम्पनों के समान हो जाते हैं।

उस विराट् के मध्य में होने से ही तुम विराट् हो।

उस को देख कर ही मुझे तुम्हारे दर्शन हुए और मैंने तुमसे प्रेम किया।

कारण, उस विराट् क्षेत्र में कौन सी ऐसी दूरी है जहां प्रेम न पहुंच सके?

कौन सी आशा-आकांक्षा और कल्पना है जो उस विराट् की उड़ान से बाहिर हो?

मधुमंजरी से आच्छादित विशाल वट-वृक्ष के समान वह विराट् पुरुष तुम्हारे अन्तर में बसा है।

उसी की शक्ति तुम्हें पृथ्वी से बांध रही है और उसी का सुवास तुम्हें आकाशविहारी बना रहा है, और उसी की अमरता में तुम मृत्युंजय बनते हो।

तुम्हें कहा जाता है कि लोहे की शृंखला की तरह दृढ़ होने पर भी तुम इसकी सब से कमज़ोर कड़ी के तुल्य हो।

यह केवल अर्ध सत्य है। तुम अपनी दृढ़तम कड़ी के समान दृढ़ भी हो।

तुम्हारे क्षुद्र कार्यों से तुम्हारी शक्ति को तोलना मानों

समुद्र तट की भंगुर फेन से समुद्र की शक्ति का अनुमान करना है।

तुम्हारी क्षणिक असफलता से ही तुम्हारे महत्त्व की परख करना वैसा ही है जैसे ऋतुओं पर परिवर्त्तनवादी होने का कलंक मढ़ना।

× × ×

हाँ, तुम समुद्र के समान हो।

यद्यपि भीमकाय जहाज़ तुम्हारे तट पर अपने अनुसार लहर की प्रतीक्षा करते हैं, तथापि तुम समुद्र की तरह अपनी लहरों में शीघ्रता उत्पन्न नहीं कर सकते।

तुम ऋतुओं के समान भी हो,

यद्यपि अपने शिशिर काल में तुम वसन्त को आने की आज्ञा नहीं देते।

तथापि तुम्हारे अन्तर में प्रसुप्त वसन्त मुसकाता रहता है और तुम्हारी अस्वीकृति से खिन्न नहीं होता।

यह ना समझो कि मैं तुम्हें यह इस लिए कह रहा हूँ कि तुम परस्पर यह कहो कि "उसने हमारी सुन्दर शब्दों में स्तुति की या उसने केवल हमारे श्रेष्ठ कार्यों को देखा"।

सच तो यह है कि अपने अन्तःकरण में जो तुम जानते हो वही मैं शब्दों में तुम से कह रहा हूं।

और शब्दमय ज्ञान, शब्द-रहित ज्ञान की छाया ही तो है।

तुम्हारे विचार और मेरे शब्द उस मुहरबन्द स्मृति की ही तरंगें हैं जिसमें हमारे विगत-काल का इतिहास सुरक्षित है,

उस काल का, जबकि पृथ्वी को न हमारा ज्ञान था न ही अपने आप का,

ना ही उन रातों का, जब पृथ्वी अपने प्रथम निर्माण की अस्तव्यस्तता में सोयी हुई थी।

× × ×

ज्ञानी पुरुष तुम्हें ज्ञान देने आये हैं—मैं तुमसे ज्ञान ग्रहण करने आया हूं।

और देखो, मुझे वह वस्तु मिली है जो ज्ञान से भी महान है।

यह है वह चैतन्य-ज्योति जो सदा अधिकाधिक प्रज्वलित होगी,

परंतु तुम इसकी वृद्धि से अनभिज्ञ रह कर क्षीण होते दिनों पर शोक मनाते हो,

यही जीवन है जो शरीर में जीवन की शोध करते हुए मृत्यु से डरता है।

× × ×

मेरी दुनिया में क़बरों का नाम तक नहीं।

ये पर्वत और समतल आगामी जीवन के पालना और सोपान हैं।

जब कभी तुम उस भूमि के निकट से निकलो, जहाँ तुमने अपने पुरुखा को दफ़न किया था, तो उसे ध्यानपूर्वक देखो तो तुम्हें यह अनुभव होगा कि तुम स्वयं वहां अपनी संतानों के हाथों में हाथ डाल कर नाच रहे हो।

वास्तव में प्रायः तुम बिना जाने ही प्रसन्न होते हो।

\+ + +

मेरी तरह तुम्हारे पास और भी आये, जिन्होंने तुम्हारे साथ आशापूर्ण वचन किये और उनके पुरस्कार रूप तुमने अपनी सम्पत्ति, अपनी शक्ति और अपनी शोभा उनकी भेंट कर दी।

यद्यपि मैंने तुम से कोई बड़ा वचन नहीं किया...तो भी तुमने उनकी अपेक्षा मेरे साथ अधिक उदारता का प्रदर्शन किया है।

तुमने मेरे भावी जीवन की पिपासा में वृद्धि कर दी है।

निश्चय ही मनुष्य के लिये इस से बड़ा कोई उपहार नहीं, जो उस के उद्देश्यों को तृषित होंठों और सम्पूर्ण जीवन को झरने में परिवर्तित कर देता है।

और इसी में मेरा मान और पुरस्कार वर्तमान है—

कि जब कभी मैं उस झरने में अपनी प्यास बुझाने आता हूँ तो उस जीवित जल को तृषित देखता हूँ।

और जब मैं उसे पीता हूँ तो वह मुझे पीता है।

तुम में से कई मुझे पुरस्कार ग्रहण करने में गर्वित और लज्जाशील समझते रहे हैं।

मज़दूरी प्राप्त करने में सचमुच ही मैं गर्वीला हूँ परन्तु पुरस्कार ग्रहण करने में नहीं।

तुम मुझे अपने घरों में अपने साथ बिठा कर भोजन कराने को प्रस्तुत थे परन्तु मैंने पर्वतों पर बेर खा-खा कर उदर-पूर्ति की,

और तुम मुझे अपने घरों में आश्रय देने के लिये उद्यत थे परन्तु मैंने मन्दिर के सोपानों पर लेट कर रातें काटीं।

परन्तु क्या यह आप द्वारा की गई मेरी दिवा-रात्रि की प्रेमपूर्ण देख-भाल का परिणाम नहीं था कि मेरे मुख का आहार मधुर बन गया और मेरी निद्रा सुखद-स्वप्नों से भरपूर हो गई।

इसके लिये मैं तुम्हें सब से अधिक आशीर्वाद देता हूँ।

तुमने मुझे बहुत कुछ दिया...परन्तु तुम नहीं जानते कि तुम ने कभी कुछ दिया भी है।

निश्चय ही कृपा, यदि अपने आपको दर्पण में देखे, तो पत्थर बन जाती है।

और एक शुभ कर्म जो अपने आपको सुकुमार नामों

से पुकारे, शाप का कारण बन जाता है।

\+ + +

तुम में से कुछ लोग मुझे एकान्त सेवी और अपने ही अकेलेपन में खोया परदेसी कहते हैं।

और स्वयं तुमने कहा है—"यह वृक्षों से बातें करता है, मनुष्यों से नहीं।

"यह गिरि-शिखरों पर अकेला रहता है और शहर की बस्ती को अकिंचन मानता है।"

यह सच है कि मैं पर्वत की चोटियों पर गया हूँ और वन-उपवन में दूर-दूर अकेला घूमा हूँ।

बहुत दूर गये या बहुत ऊँचा चढ़े बिना मैं तुम्हें भली भांति देख ही कैसे सकता था?

सच है, दूर गये बिना कोई निकट हो भी कैसे सकता है?

\+ + +

तुम में कुछ ने मुझे पुकारा-वाणी से नहीं बल्कि हृदय से-

इन अजेय और अगम्य शिखरों पर चढ़ने वाले परदेशी! तुम उन पर्वत शृंगों पर क्यों चढ़ते हो, जहाँ चीलें अपना घोंसला बनाती हैं?

"तुम अलभ्य की तलाश क्यों करते हो?

"तुम कौन से झंझावात को अपने जाल में बांधने की कोशिश कर रहे हो?

"तुम कौन से तेज़ उड़ने वाले पक्षियों को आकाश में बांधने के लिये जाल बिछा रहे हो ?

"आओ, और हमारे बीच हमारे सदृश बन कर रहो।"

"आओ, और हमारे अन्न में से अपना भाग लेकर अपनी क्षुधा मिटाओ और हमारी सुरा से अपनी तृषा शान्त करो।"

ये शब्द वे अपनी एकान्तगत आत्मा से कहते थे।

किन्तु यदि उनकी यह एकान्तता और अधिक गूढ़ हो जाती तो उन्हें पता लग जाता कि मैं उनसे दूर रह कर भी उन्हीं के आनन्द और दुःखों के रहस्य की शोध कर रहा था;

मैं केवल उन्हीं के आकाश विहारी विराट् रूप की एक व्याध की तरह खोज करता था।

किन्तु शिकारी स्वयं भी शिकार था;

कारण, मेरे धनुष से छूटे हुए बहुत से बाण मेरे ही हृदय में चुभ गये हैं।

और उड़ने वाला पृथ्वी पर रेंगने वाला भी था,

क्योंकि जब मैं आकाश में उड़ने के लिए पंख फैलाता था—तो उसकी छाया सूर्य के प्रकाश में पृथ्वी पर पड़ती थी—जो कछुए के समान पृथ्वी पर धीरे-धीरे रेंगती थी।

और मैं जैसा श्रद्धावान् हूं वैसा ही संशयात्मा भी हूं;

क्योंकि मैंने अपने घाव में प्रायः अपनी उंगली डाली है

ताकि मुझे तुम्हारे प्रति अधिक विश्वास हो और तुम्हारे विषय में अधिक ज्ञान की प्राप्ति हो।

उसी विश्वास और ज्ञान के भरोसे मैं तुम्हें कहता हूं कि,

तुम अपने शरीर-रूपी पिंजड़े के बन्दी नहीं हो और न ही घरों और खेतों की सीमा में रहने वाले हो।

तुम्हारा 'स्व' पर्वत-शिखरों पर पवन के झकोरों में स्वतन्त्र विचरने वाला है।

यह कोई ऐसी वस्तु नहीं जो गर्मी पाने के लिये सूर्य-किरणों की उपेक्षा करती है या सुरक्षा के लिये भूमि के अंधेरे छिद्रों की शरण लेती है।

अपितु यह एक ऐसी वस्तु है—एक ऐसी आत्मा है—जो पृथ्वी पर छाई हुई है और आकाश में संचार करती है।

\+ + +

यदि मेरे शब्द सन्दिग्ध हैं—तो इन्हें स्पष्ट करने का प्रयत्न मत करो।

वस्तु मात्र का आरम्भ संदिग्ध और धुंधले से ही होता है—किन्तु उनका अन्त वैसा नहीं होता,

और मैं चाहता हूं कि तुम्हें आरम्भ के रूप में ही मेरा स्मरण रहे।

जीवन और सर्वचैतन्यमय का जन्म अस्पष्ट-कुहरे से ही होता है—स्फटिक से नहीं।

कौन नहीं जानता कि स्फटिक—उस कुहरे की क्षयोन्मुख अवस्था का रूप है।

\+ + +

मेरी इच्छा है कि मेरी स्मृति में तुम्हें यह भी स्मरण रहे कि:—

तुम्हारे भीतर जो बहुत क्षीण और अस्थिर वस्तु है वही सबल और सुदृढ़ है।

स्मरण रहे, तुम्हारी हड्डियों में प्राण भरने वाला श्वास भी बहुत क्षीण और अस्पष्ट प्रतीत होता है।

और तुम्हारे भव्य प्रासादों को जन्म देने वाला भी वह धुंधला स्वप्न ही होता है जिसकी तुम्हें याद भी नहीं रहती।

यदि उस प्राण की तरंगों को देखने की शक्ति तुम में आजाए तो तुम और सब कुछ भूल जाओ।

और अगर तुम उन स्वप्नों की अस्पष्ट ध्वनि सुन सको तो तुम्हें अन्य शब्दों के श्रवण की इच्छा ही न रहे।

\+ + +

किन्तु तुम में उन्हें न देखने की शक्ति है और न सुनने की। और यह अच्छा ही है।

तुम्हारी आंखों के आवरण उन्हीं हाथों से उठाए जायेंगे जो वास्तव में उन आवरणों का कारण हैं।

तुम्हारे कर्ण-कुहरों में भरी मृत्तिका को वही उंगलियां छिन्न कर सकेंगी जिन ने उसे गूंध कर तय्यार किया था।

तब, तुम्हारी आंखें देख सकेंगी,

तब तुम्हारे कान सुन सकेंगे।

तब, तुम्हें अपनी अन्धता पर खेद न होगा और न ही अपनी वधिरता पर शोकार्त्त होना पड़ेगा।

कारण, उसी दिन तुम्हें सब चराचर चीज़ों के गूढ़ प्रयोजनों का ज्ञान होगा।

और तभी तुम अंधकार को भी इतना ही शुभ वरदान समझोगे जितना कि प्रकाश को समझते हो।

× × ×

इस प्रवचन के बाद उन्होंने अपने चारों ओर दृष्टिपात किया—और देखा कि जहाज़ के नाविक पतवारों के समीप खड़े हैं। कभी वे वायु से भरे हुए पालों की ओर देखते हैं और कभी अपनी लम्बी यात्रा की ओर।

और उन्हों ने कहा—

मेरी नाव का कर्णधार अतुल धैर्यवान् है।

वायु का वेग बढ़ रहा है, और पाल आतुर हो रहे हैं,

और तो और पतवार भी चलने की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं;

फिर भी—मेरा धीर-कर्णधार मेरे मौन की प्रतीक्षा में है।

और, सदा महासागर का घोष श्रवण करने वाले नाविक-वृन्द ने भी मुझे बड़े धैर्य से सुना।

किन्तु अब वे और अधिक नहीं रुकेंगे।

मैं तय्यार हूँ।

निर्झर-धारा सागर तक पहुँच रही है—एक बार फिर जगत-जननी अपने बाल को गोद में ले रही है।

\+ + +

विदा, ऐ आर्फलीज निवासियो! विदा।

आज का दिन समाप्त हो गया।

कमल की पांखों के समान हम भी पुनः प्रभात-दर्शन तक अपने पंखों को समेटते हैं।

जो कुछ हमें यहां दिया गया—उस की हम यत्न पूर्वक रक्षा करेंगे।

और यदि यह पर्याप्त नहीं होगा तो हम फिर यहाँ आकर इकट्ठे होंगे और अपने दाता के द्वार पर भिक्षा लेने के लिए हाथ फैलायेंगे।

भूल न जाना, मैं फिर वापिस लौटूँगा।

बस, कुछ ही पल का विराम होगा, कि मेरी वासनायें किसी अन्य शरीर के लिए मिट्टी और झाग बटोरेंगी।

बस, कुछ ही पल का विराम होगा, आकाश में घड़ी भर

दम लूंगा कि कोई अन्य जननी मुझे अपने गर्भ में धारण कर लेगी।

तुम्हें और तुम्हारे संग व्यतीत हुए यौवन को मेरा अन्तिम प्रणाम है।

कल ही हमारी भेंट स्वप्न हो जायगी।

कल ही मेरे एकान्त को तुम ने अपने गीतों से भरा था और मैंने तुम्हारे मनोरथों का एक गगन चुम्बी मीनार बना लिया था।

किन्तु अब हमारी नींद समाप्त हो गई है, हमारे सपने टूट गये हैं और प्रभात की वेला भी गुज़र गई है।

मध्याह्न समीप आया है, हमारी अर्ध-जागृति के क्षण पूर्ण दिवस में बदल गये हैं; अब हमें विदा लेनी चाहिये।

स्मृति की संध्या में यदि हमारा पुनः मिलन हुआ तो हम फिर मन की बातें करेंगे और तुम मुझे फिर कोई मधुर गीत सुनाओगे।

स्वप्नों में यदि फिर हमारे हाथ मिल गये तो फिर से हम आकाश में अपने मनोरथों की मीनार खड़ी करेंगे।

× × ×

यह कहते हुए उन्होंने मल्लाहों को इशारा किया। मल्लाहों ने लंगर ऊपर खींच लिया, जहाज़ की डोरियों के बांध खोल दिये और जहाज़ ने पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान कर दिया।

उसी समय जन-समूह में से, सब शोकविद्ध हृदयों की चीत्कार के समान एक दर्द भरी पुकार उठी, जो संध्या की धूमिल छाया में मिलकर समुद्र के तुमुल घोष में मिल गई।

केवल अलमित्रा ही मौन हुई जहाज़ को उस समय तक एकटक देखती रही जब तक कि वह क्षितिज के धुंधले में लीन नहीं हो गया।

जब सब लोग बिखर गये तब भी वह अकेली ही समुद्र-तट पर ध्यान-मग्न खड़ी रही—और अलमुस्तफ़ा के इन शब्दों को स्मरण करती रही:—

"कुछ ही पल का विराम होगा, आकाश में घड़ी भर दम लूंगा कि कोई अन्य जननी मुझे अपने गर्भ में धारण करेगी।"

Shri Pratap Singh
Library
Srinagar.

SPS
891.431 S 16 J
15919

15919
16810/2